Rapid कहानियाँ

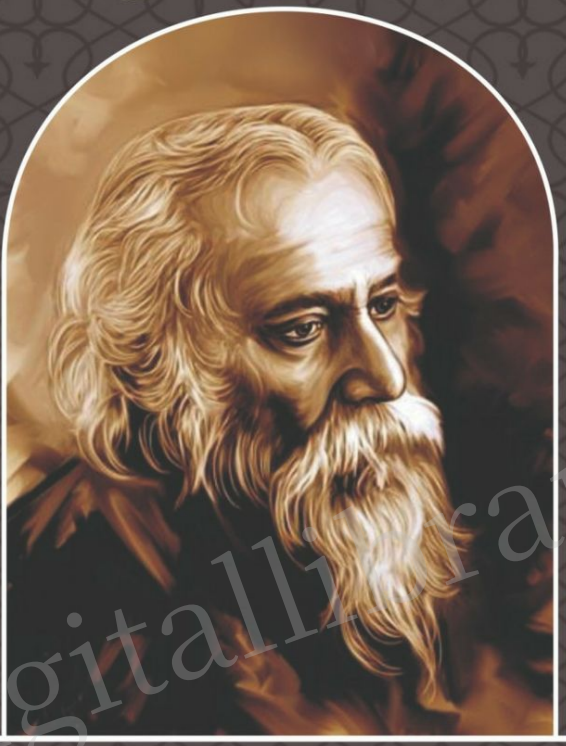

@digitallibrary84

रवींद्रनाथ टैगोर

की 5 सुपरहिट कहानियाँ

VISIT…

रवींद्रनाथ टैगोर

की

पाँच सुपरहिट कहानियाँ

रवींद्रनाथ टैगोर

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

@digitallibrary84

विषय सूची

अंतिम प्यार

भाई-भाई

कंचन

धन की भेंट

पत्नी का पत्र

@digitallibrary84

अंतिम प्यार

आर्ट स्कूल के प्रोफेसर मनमोहन बाबू घर में बैठे हुए दोस्तों के साथ मनोरंजन कर रहे थे, ठीक उसी वक्त योगेश बाबू कमरे में घुसे।

योगेश बाबू उत्तम श्रेणी के चित्रकार थे, उन्हेंने अभी थोड़े वक्त पूर्व ही स्कूल छोड़ा था। उन्हें देखकर एक आदमी ने कहा, "योगेश बाबू! नरेंद्र क्या कहता है, आपने सुना कुछ उसके बारे में?"

योगेश बाबू ने आरामकुरसी पर बैठकर पहले तो एक लंबी साँस ली, उसके पश्चात् बोले, "क्या कहता है वह?"

"नरेंद्र कहता है, बंग-प्रंत में उसकी कोटि का केई भी चित्रकार इस समय नहीं है।"

"सही है, अभी नया-नया लड़का है न। हम लोग तो जैसे आज तक घास छीलते रहे हैं।" झुँझलाकर योगेश बाबू ने कहा।

जो लड़का बातें कर रहा था, उसने कहा, "सिर्फ यही नहीं, नरेंद्र आपको भी सम्मान की नजर से नहीं देखता।"

योगेश बाबू ने उपेक्षित भाव से कहा, "क्यों, मैंने कुछ गलती की है?"

"वह कहता है, आप अपने आदर्श को ध्यान में रखते हुए चित्र नहीं बनाते।"

"तो किस नजरिए से बनाता हूँ?"

"केवल रुपयों के लिए।"

योगेश ने एक नेत्र बंद करके कहा, "बेकार, ये सब बेकार की बातें हैं।" फिर आवेश में कान के पास से अपने अस्त-व्यस्त बालों को ठीक कर काफी देर तक खामोश बैठा रहा। चीन का जो सबसे बड़ा चित्रकार हुआ है, उसके बाल भी बहुत बड़े थे। यही वजह थी कि योगेश ने भी अपने स्वभाव के विपरीत सिर पर लंबे-लंबे बाल रखे हुए थे। ये बाल उनके मुख पर बिलकुल नहीं जँचते थे, क्योंकि बचपन में एक बार चेचक के आक्रमण से उनके प्राण तो बच गए थे, मगर मुख बहुत कुरूप हो गया था। एक तो काला रंग, दूसरे चेचक के दाग। चेहरा देखकर अचानक यही जान पड़ता था, मानो किसी ने बंदूक में छर्रे भरकर लिबलिबी दबा दी हो।

कक्ष में जो लड़के बैठे थे, योगेश बाबू को क्रोध में देखकर उनके सामने ही मुँह बंद करके हँस रहे थे।

सहसा वह हँसी योगेश बाबू ने भी देख ली, गुस्से के स्वर में बोले, "तुम लोग क्यों हँस रहे हो?"

@digitallibrary84

एक लड़के ने चाटुकारिता से जल्दी-जल्दी कहा, “नहीं महाशयजी! आपको क्रोध आए और हम लोग हँसें, भला कभी ऐसा हो सकता है।”

“ऊँह! मैं समझ गया, अब अधिक चालाकी की जरूरत नहीं। क्या तुम लोग यह कहना चाहते हो कि अब तक तुम सब दाँत निकालकर रो रहे थे? मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूँ।” यह कहकर उन्होंने आँखें मूँद लीं।

लड़कों ने किसी तरह हँसी रोककर कहा, “चलिए यों ही सही, हम हँसते ही थे और रोते भी क्यों? मगर हम नरेंद्र के पागलपन को सोचकर हँसते थे। वह देखो, मास्टर साहब के साथ नरेंद्र भी आ रहा है।”

मास्टर साहब के साथ-साथ नरेंद्र भी कमरे में आ गया था।

योगेश ने एक बार नरेंद्र की तरफ घूमती हुई नजर से देखकर मनमोहन बाबू से कहा, “मेरे बारे में नरेंद्र क्या कहता है?”

मनमोहन बाबू जानते थे कि उन दोनों की लगती है। दो पाषाण जब परस्पर टकराते हैं तो आग पैदा हो ही जाती है। अतएव वह बात को सँभालकर, मुसकराते हुए बोले, “योगेश बाबू, नरेंद्र क्या कहता है?”

मोहन बाबू ने पूछा, “क्यों नरेंद्र?”

नरेंद्र अब तक मौन खड़ा था, अब किसी तरह आगे आकर बोला, “हाँ कहता हूँ, मेरा यही मशवरा भी है।”

योगेश बाबू ने मुँह बनाकर कहा, “बड़े आए राय देने वाले। छोटे मुँह बड़ी बात। अभी कल का छोकरा और इतनी बड़ी-बड़ी बातें!”

मनमोहन बाबू ने कहा, “योगेश बाबू, जाने दीजिए, नरेंद्र अभी छोटा है तथा बात भी छोटी सी है। इस पर झगड़ने की क्या जरूरत है?”

योगेश बाबू उसी प्रकार आवेश में बोले, “बच्चा है। नरेंद्र बच्चा है? जिसके मुँह पर इतनी बड़ी-बड़ी मूँछें हों, वह अगर बच्चा है तो बूढ़ा क्या होगा, मोहन बाबू! आप क्या कहते हैं?”

एक विद्यार्थी ने कहा, “महाशय! अभी कुछ समय पहले तो आपने उसको कल का छोकरा बताया था।”

योगेश बाबू का मुख क्रोध से लाल हो गया, बोले, “कब कहा था?”

“अभी इससे कुछ समय पहले।”

“झूठ! बिलकुल झूठ! जिसकी इतनी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं, मैं उसे छोकरा कहूँ, नामुमकिन है। क्या तुम लोग यह कहना चाहते हो कि मैं बिलकुल मूर्ख हूँ?”

सब लड़के एक स्वर में बोले, “नहीं, महाशय! ऐसी बात हम भूलकर भी मुँह पर नहीं ला सकते।”

मनमोहन बाबू किसी तरह हँसी को रोककर बोले, “चुप-चुप! बात को घुमाओ नहीं।”

@digitallibrary84

योगेश बाबू ने कहा, “हाँ नरेंद्र! तुम यह कहते हो कि बंग-प्रंत में तुम्हारे जैसा कोई चित्रकार नहीं है।”

नरेंद्र ने कहा, “आपने किस तरह जाना?”

“तुम्हारे दोस्तों ने मुझसे कहा था।”

“मैं यह नहीं कहता। तब भी इतना जरूर कहूँगा कि मेरी भाँति हृदय-रक्त पीकर बंगाल में कोई चित्र नहीं बनाता।”

“इसका प्रमाण?”

नरेंद्र ने आवेशमय स्वर में कहा, “प्रमाण की क्या आवश्यकता है? मेरा अपना यही विचार है।”

“तुम्हारा खयाल गलत है।”

नरेंद्र बहुत कम बोलने वाला आदमी था। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

मनमोहन बाबू ने इस नाराजगी वाली बातचीत को बंद करने के प्रति कहा, “नरेंद्र, इस बार प्रदर्शनी के लिए तुम चित्र बनाओगे न?”

नरेंद्र ने कहा, “इरादा तो है।”

“मैं देखूँगा, तुम्हारा चित्र कैसा रहता है?”

नरेंद्र ने श्रद्धाभाव से उसकी पग-धूलि लेकर कहा, “जिसके गुरु आप हैं, उसे क्या परेशानी? देखना सबसे अच्छा रहेगा।”

योगेश बाबू ने कहा, “राम से पहले रामायण! पहले चित्र बनाओ फिर कहना।”

नरेंद्र ने मुँह फेरकर योगेश बाबू की तरफ देखा, कहा कुछ भी नहीं, मगर खामोशी और उपेक्षा ने बातों से कहीं अधिक योगेश के मन को आहत किया।

मनमोहन बाबू ने कहा, “योगेश बाबू, चाहे आप कुछ कहें, परंतु नरेंद्र को अपनी आत्मिक शक्ति पर बहुत बड़ा यकीन है। मैं पक्के यकीन से कह सकता हूँ कि यह भविष्य में एक बड़ा चित्रकार होगा।”

नरेंद्र धीरे-धीरे कक्ष से बाहर चला गया।

एक विद्यार्थी ने कहा, “प्रोफेसर साहब, नरेंद्र में किसी हद तक विक्षिप्तता की झलक दिखाई देती है?”

@digitallibrary84

मनमोहन बाबू ने कहा, "हाँ, मैं जानता हूँ। जो इनसान अपने भाव अच्छी प्रकार प्रकट करने में सफल हो जाता है, उसे सर्व-साधारण किसी हद तक विक्षिप्त समझते हैं। चित्र में एक विशेष तरह का आकर्षण तथा मोहकता उत्पन्न करने की उसमें असाधारण योग्यता है। तुम्हें पता है, नरेंद्र ने एक बार क्या किया था? मैंने देखा कि नरेंद्र के बाएँ हाथ की उँगली से खून का फव्वारा छूट रहा है और वह बिना किसी दर्द के बैठा चित्र बना रहा है। मैं तो देखकर आश्चर्यचकित रह गया। मेरे मालूम करने पर उसने जवाब दिया कि उँगली काटकर देखी कि खून का असली रंग क्या है? अजीब इनसान है। तुम लोग इसे विक्षिप्तता कह सकते हो, मगर इसी विक्षिप्तता के कारण तो वह एक दिन अमर कलाकार कहलाएगा।"

योगेश बाबू आँख मूँदकर सोचने लगे। जैसे गुरु वैसे चेले-दोनों के दोनों बेवकूफ हैं।

❑

नरेंद्र सोचते-सोचते घर की तरफ चला, मार्ग में भीड़-भाड़ थी। कितनी ही गाड़ियाँ चली जा रही थीं, मगर इन बातों की ओर उसका ध्यान नहीं था। उसे क्या फिक्र थी? संभवतः इसका भी उसे पता न था।

वह कुछ समय के अंदर ही बहुत बड़ा चित्रकार हो गया, बहुत कम समय में ही वह इतना मशहूर तथा सर्वप्रिय हो गया था कि उसके ईर्ष्यालु मित्रों को अच्छा न लगा। इन्हीं ईर्ष्यालु मित्रों में योगेश बाबू भी थे। नरेंद्र में एक खास योग्यता और उसकी तूलिका में एक असाधारण शक्ति है, योगेश बाबू इसे दिल-ही-दिल में खूब समझते थे; लेकिन ऊपर से उसे मानने के प्रति तैयार न थे।

इस थोड़े वक्त में ही इतनी प्रसिद्धि हासिल करने का एक खास कारण यह भी था कि नरेंद्र जिस चित्र को भी बनाता था, अपनी सारी काबिलियत उसमें लगा देता था। उसकी नजर सिर्फ चित्र पर रहती थी, पैसे की ओर भूलकर भी उसका ध्यान नहीं जाता था। उसके मन की महत्त्वाकांक्षा थी कि चित्र बहुत ही सुंदर हो, उसमें अपने ढंग की खास विलक्षणता हो। मूल्य चाहे कम मिले या अधिक, वह अपने विचार और भावनाओं की मधुर रूपरेखाएँ अपने चित्र में देखता था। जिस वक्त चित्र चित्रित करने बैठता तो चारों तरफ फैली हुई असीम प्रकृति और उसकी सारी रूपरेखाएँ हृदय-पट से गुंफित कर देता। इतना ही नहीं, वह अपने वजूद से भी विस्मृत हो जाता। वह उस वक्त पागलों की भाँति दिखाई पड़ता और अपने प्राण तक न्योछावर कर देने से भी संभवतः उसको कोई हिचक न होती। यह हालत उस वक्त की एकाग्रता की होती। हकीकत में इसी कारण उसे यह सम्मान प्राप्त हुआ। उसके स्वभाव में सादगी थी, वह तो बात सादगी से कहता, लोग उसे अभिमान तथा प्रदर्शनी से लदी हुई समझते। उसके सामने कोई कुछ न कहता, मगर पीठ पेछे लोग उसकी बुराई करने से न चूकते, सब-

के-सब नरेंद्र को संज्ञाहीन सा पाते, वह किसी बात को कान लगाकर न सुनता, कोई पूछता कुछ तथा जवाब देता और ही। वह हमेशा ऐसा मालूम होता जैसे अभी-अभी स्वप्न देख रहा था और किसी ने सहसा उसे जगा दिया। उसने विवाह किया और एक लड़का भी उत्पन्न हुआ, पत्नी बहुत सुंदर थी, मगर नरेंद्र को गृहस्थ जीवन में किसी तरह का आकर्षण न था, तब भी उसका हृदय प्रेम का विशाल सागर था, वह हर समय इसी धुन में रहता था कि चित्रकला में प्रसिद्धि हासिल करे। यही कारण था कि लोग उसे पागल समझते थे। किसी हलकी चीज को यदि पानी में जबरदस्ती डुबो दो तो वह किसी तरह भी न डूबेगी, वरन् ऊपर तैरती रहेगी। ठीक यही दशा उन लोगों की होती है, जो अपनी धुन के पक्के होते हैं। वे दुनियादारी के दुख-सुख में किसी तरह डूबना नहीं जानते। उनका मन हर वक्त काम की पूर्ति में लगा रहता है।

नरेंद्र सोचते-सोचते अपने घर के सामने आ खड़ा हुआ। उसने देखा कि दरवाजे के पास उसका चार वर्ष का बच्चा दौड़ता हुआ आया तथा दोनों हाथों से नरेंद्र को पकड़कर बोला, "बाबूजी!"

"क्या बात है बेटे?"

बच्चे ने पिता का हाथ पकड़ लिया तथा खींचते हुए कहा, "बाबूजी, देखो हमने एक मेढक मारा है, जो लँगड़ा हो गया है।"

नरेंद्र ने कहा, "वह घर नहीं जा सकता-लँगड़ा हो गया है, कैसे जाएगा? चलो उसे गोद में उठाकर उसके घर पहुँचा दो।"

नरेंद्र ने बच्चे को गोद में उठा लिया और हँसते-हँसते घर में ले गया।

❑

एक दिन नरेंद्र को याद आया कि इस बार की प्रदर्शनी में जैसे भी हो, अपना एक चित्र भेजना चाहिए। कक्ष की दीवार पर उसके हाथ के कितने ही चित्र लगे हुए थे। कहीं प्राकृतिक मंजर, कहीं मानव के शरीर की रूपरेखा, कहीं सोने की तरह सरसों के खेत की हरियाली, जंगली मनमोहक दृश्यावलि तथा कहीं वे रास्ते, जो छाया वाले वृक्षों के नीचे से टेढ़े-तिरछे होकर नदी के पास जा मिलते थे। धुएँ की तरह गगनचुंबी पहाड़ों की पंक्ति, जो तेज धूप में खुद झुलसी जा रही थी और सैकड़ों पथिक धूप से बेचैन होकर छायादार वृक्षों के समूह में शरणार्थी थे, ऐसे कितने ही दृश्य थे। दूसरी तरफ अनेकों पक्षियों के चित्र थे। उन सबके मनोभाव उनके मुखों से प्रकट हो रहे थे। कोई क्रोध से भरा हुआ, कोई मुसीबत की हालत में तो कोई प्रसन्न मुद्रा-स्थिति में।

कमरे के उत्तरीय भाग में खिड़की के सामने एक अपूर्ण चित्र लगा हुआ था, उसमें ताड़ के वृक्षों के समूह के समीप सदा मौन रहने वाली छाया के आश्रय में एक सुंदर नवयुवती नदी के नीलवर्ण जल में स्थिर बिजली सी शांत खड़ी थी।

@digitallibrary84

उसके होंठों और मुख की रेखाओं में चित्रकार ने मन की पीड़ा अंकित की थी। ऐसा मालूम होता था, मानो चित्र बोलना चाहता है, मगर यौवन अभी उसके बदन में पूरी तरह प्रस्फुटित नहीं हुआ है।

इन सब चित्रों में चित्रकार के इतने दिनों की आशा तथा निराशा मिली-जुली थी, मगर आज उन चित्रों की रेखाओं और रंगों ने उसे अपनी ओर आकर्षित न किया। उसके मन में बार-बार यही विचार आने लगे कि इतने दिनों उसने केवल बच्चों का खेल किया है, सिर्फ कागज के टुकड़ों पर रंग पोता है। इतने दिनों से उसने जो कुछ रेखाएँ कागज पर खींची थीं, वे सब उसके मन को अपनी ओर आकर्षित न कर सकीं; क्योंकि उसके विचार पहले की अपेक्षा बहुत उच्च थे। उच्च ही नहीं बल्कि बहुत ऊँचे होकर चील की भाँति आसमान में मँडराना चाहते थे। यदि वर्षा ऋतु का सुहावना दिन हो तो क्या कोई ताकत उसे रोक सकती थी? वह उस समय जोश में आकर उड़ने की उत्सुकता में असीमित दिशाओं में उड़ जाता, फिर एक बार भी पलटकर नहीं देखता। अपनी पहली हालत पर किसी तरह भी वह सहमत नहीं था। नरेंद्र के मन में रह-रहकर यही विचार आने लगा। भावना और लालसा की झड़ी सी लग गई।

उसने निश्चय कर लिया कि इस बार ऐसा चित्र बनाएगा, जिससे उसका नाम अमर हो जाए। वह वास्तविकता को सबके मन में बैठा देना चाहता था कि उसकी अनुभूति बचपन की अनुभूति नहीं है।

मेज पर सिर रखकर नरेंद्र विचारों का ताना-बाना बुनने लगा। वह क्या बनाएगा? किस विषय पर बनाएगा? मन पर आघात होने से साधारण असर पड़ता है। भावनाओं के कितने ही पूर्ण और अपूर्ण चित्र उसकी निगाहों के सामने से सिनेमा-चित्र की तरह चले गए, लेकिन किसी ने भी दम भर के प्रति उसके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित न किया। सोचते-सोचते शाम अँधियारे में शंख की मधुर ध्वनि ने उसको मस्त कर देने वाला गाना सुनाया। इस स्वर-लहरी से नरेंद्र चौंककर उठ खड़ा हुआ। तत्पश्चात् उसी अंधकार में वह चिंतन-मुद्रा में कमरे के अंदर पागलों की तरह टहलने लगा, लेकिन सब बेकार! महान् प्रयत्न करने के बाद भी कोई विचार न सूझा।

रात बहुत हो चुकी थी। अमावस्या की अँधेरी में आसमान परलोक की भाँति धुँधला प्रतीत होता था। नरेंद्र कुछ खोया-खोया सा पागलों की भाँति उसी तरफ ताकता रहा।

बाहर से रसोइये ने द्वार खटखटाकर कहा, “बाबूजी!”

चौंककर नरेंद्र ने पूछा, “कौन?”

“बाबूजी भोजन तैयार है, चलिए।”

झुँझलाते हुए नरेंद्र ने कटु स्वर में कहा, “मुझे परेशान न करो। जाओ, मैं इस वक्त न खाऊँगा।”

“कुछ थोड़ा सा।”

“मैं कहता हूँ, बिलकुल नहीं।” और निराश हृदय रसोइया भारी कदमों से वापस लौट गया तथा नरेंद्र ने अपने को चिंतन-सागर में डुबो दिया। संसार में जिसको प्रसिद्धि हासिल करने की लगन लग गई हो, फिर उसको चैन कहाँ!

❑

पूरा एक सप्ताह बीत गया। इस सप्ताह में नरेंद्र ने अपने घर से बाहर कदम न निकाला। घर में बैठा सोचता रहता, किसी-न-किसी मंत्र से तो पूजा की देवी अपनी कला दिखाएगी ही।

इससे पूर्व किसी चित्र के लिये उसे विचार-प्राप्ति में देर न लगती थी, परंतु इस बार किसी तरह भी उसे कोई बात न सूझी। ज्यों-ज्यों दिन व्यतीत होते जाते थे, वह निराश होता जाता था। केवल यही क्यों? कई बार तो उसने गुस्से में आकर सिर के बाल नोच लिये। वह अपने आपको गालियाँ देता, पृथ्वी पर पेट के बल पड़कर बच्चों की तरह रोया भी, परंतु सब बेकार।

प्रातःकाल नरेंद्र मौन बैठा था कि मनमोहन बाबू के द्वारपाल ने आकर उसे एक पत्र दिया। उसने उसे खोलकर देखा। प्रोफेसर साहब ने उसमें लिखा था, “प्रिय नरेंद्र,

प्रदर्शनी होने में अब अधिक दिन बाकी नहीं हैं। एक सप्ताह के अंदर यदि चित्र न आया तो ठीक नहीं। लिखना, तुम्हारी क्या तरक्की हुई है और तुम्हारा चित्र कितना बन गया है?

योगेश बाबू ने चित्र चित्रित कर दिया है। मैंने देखा है, सुंदर है, परंतु मुझे तुमसे और भी अच्छे चित्र की आशा है। तुमसे अधिक प्रिय मुझे और कोई नहीं। आशीर्वाद देता हूँ, तुम अपने गुरु की प्रतिष्ठा रख सकोगे।

इसका ध्यान रखना। इस प्रदर्शनी में यदि तुम्हारा चित्र अच्छा रहा तो तुम्हारी ख्याति में कोई बाधा न रहेगी। तुम्हारी मेहनत सफल हो, यही मेरी दुआ है।”

पत्र पढ़कर नरेंद्र और भी बेचैन हुआ। केवल एक सप्ताह शेष है और अभी तक उसके मस्तिष्क में चित्र के विषय में कोई विचार नहीं आया। खेद है, अब वह क्या करेगा?

उसे अपने आत्मबल पर बहुत यकीन था, पर इस समय यह विश्वास भी जाता रहा, क्या इसी तुच्छ शक्ति पर वह दस व्यक्तियों में सिर उठाए फिरता रहा है?

उसने सोचा था, अमर कलाकार बन जाऊँगा, परंतु वाह री मेरी बुरी किस्मत! अपनी अयोग्यता पर नरेंद्र की आँखों में आँसू भर आए।

@digitallibrary84

रोगी की रात जैसे आँखों में निकल जाती है, उसकी वह रात वैसे ही खत्म हुई। नरेंद्र को इसका तनिक भी पता न हुआ। उधर वह कई दिनों से चित्रशाला ही में सोया था। नरेंद्र पर जागरण के चिह्न थे। उसकी पत्नी दौड़ी-दौड़ी आई और शीघ्रता से उसका हाथ पकड़कर बोली, "क्या हुआ?"

पत्नी लीला हाँफते हुए बोली, "शायद हैजा! इस प्रकार खड़े न रहो, बच्चा बिलकुल बेहोश पड़ा है।"

बहुत ही अनमने मन से नरेंद्र शयनकक्ष में घुसा।

बच्चा बिस्तर से लगा पड़ा था। पलंग के चारों ओर उस भयानक रोग के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे थे। लाल रंग दो घड़ी में ही पीला हो गया था। अचानक देखने से यही ज्ञात होता था, जैसे बच्चा जिंदा नहीं है। केवल उसके वक्ष के समीप कोई वस्तु धक्त-धक्त कर रही थी, और इस क्रिया से ही जीवन के कुछ चिह्न दृष्टिगोचर होते थे।

वह बच्चे के सिरहाने सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

लीला ने कहा, "इस तरह खड़े न रहो। जाओ, डॉक्टर को बुला लाओ।"

माँ की आवाज सुनकर बच्चे ने आँखें मलीं। भर्राई हुई आवाज में बोला, "माँ! ओ माँ!!"

"मेरा लाल! मेरी पूँजी! क्या कह रहा है?" कहते-कहते लीला ने दोनों हाथों से बच्चे को अपनी गोद से चिपका लिया। माँ के वक्ष पर सिर रखकर बच्चा फिर पड़ा रहा।

नरेंद्र के नेत्र सजल हो गए। वह बच्चे की ओर देखता रहा।

लीला ने देखते हुए प्रश्नवाचक स्वर में कहा, "अभी तक डॉक्टर को बुलाने नहीं गए?"

नरेंद्र ने दबी आवाज में कहा, "ऐं डॉक्टर?"

पति की आवाज का अस्वाभाविक स्वर सुनकर लीला ने आश्चर्य में होते हुए कहा, "क्या?"

"कुछ नहीं।"

"जाओ, डॉक्टर को बुला लाओ।"

"अभी जाता हूँ।"

नरेंद्र घर से बाहर निकला।

कमरे का दरवाजा बंद हुआ। लीला ने आश्चर्यचकित होकर सुना कि उसके पति ने बाहर से द्वार की जंजीर खींच ली और वह सोचती रही, 'यह क्या?'

❑

नरेंद्र चित्रशाला में प्रविष्ट होकर एक कुरसी पर बैठ गया।

@digitallibrary84

दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर वह सोचने लगा। उसकी दशा देखकर ऐसा लगता था कि वह किसी तीव्र आत्मिक पीड़ा से पीड़ित है। चारों तरफ गहरे सूनेपन का राज्य था। केवल दीवार पर लगी हुई घड़ी कभी न थकने वाली गति से टिक्त-टिक्त कर रही थी और नरेंद्र के सीने के अंदर उसका हृदय मानो उत्तर देता हुआ कह रहा था, धक्-धक्! संभवतः उसके भयंकर संकल्पों से परिचित होकर घड़ी और उसका हृदय परस्पर कानाफूसी कर रहे थे। सहसा नरेंद्र उठ खड़ा हुआ, संज्ञाहीन हालत में कहने लगा, "क्या करूँ? ऐसा आदर्श फिर न मिलेगा, परंतु वह तो मेरा पुत्र है।"

वह कहते-कहते रुक गया, मौन होकर सोचने लगा। अचानक मकान के अंदर से सनसनाते हुए बाण की भाँति 'हाय' की हृदयबेधक आवाज उसके कानों में पहुँची।

"मेरे लाल! तू कहाँ गया?"

जिस प्रकार चिल्ला टूट जाने से कमान सीधी हो जाती है, फिक्र और बेचैनी से नरेंद्र ठीक उसी तरह सीधा खड़ा हो गया। उसके मुख पर लाली का चिह्न तक न था, फिर कान लगाकर उसने आवाज सुनी, वह समझ गया कि बच्चा चल बसा।

मन-ही-मन बोला, "भगवान! तुम ही गवाह हो, मेरी कोई गलती नहीं।"

इसके बाद वह अपने सिर के बालों को मुट्ठा में लेकर सोचने लगा। जैसे कुछ समय पश्चात् ही मनुष्य निंद्रा से चौंककर उठता है, उसी प्रकार चौंककर जल्दी-जल्दी मेज पर से कागज, तूलिका और रंग आदि लेकर वह कमरे से बाहर निकल आया। शयनकक्ष के सामने एक खिड़की के करीब वह अचकचाकर खड़ा हो गया। कुछ सुनाई देता है क्या? नहीं, सब खामोश हैं। उस खिड़की से कमरे का आंतरिक भाग दिखाई पड़ रहा था। झाँककर आशंका में थर-थर काँपते हुए उसने देखा तो उसके सारे शरीर में काँटे से चुभ गए। बिस्तर उलट-पुलट हो रहा था। पुत्र से खाली गोद किए माँ वहीं पड़ी तड़प रही थी।

और इसके अलावा, माँ कमरे में पृथ्वी पर लोटते हुए, बच्चे के मृत शरीर को दोनों हाथों से वक्षस्थल के साथ चिपकाए, बाल बिखेरे, नेत्र विस्फारित किए, बच्चे के निर्जीव होंठों को बार-बार चूम रही थी।

नरेंद्र की दोनों आँखों में किसी ने दो सलाखें घुसा दी हों, उसने होंठ चबाकर कठिनता से स्वयं को सँभाला और इसके साथ ही कागज पर पहली रेखा खींची। उसके सामने कमरे के अंदर वही भयानक दृश्य उपस्थित था। संभवतः संसार के किसी अन्य चित्रकार ने ऐसा दृश्य सम्मुख रखकर तूलिका न उठाई होगी।

देखने में नरेंद्र के शरीर में कोई गति न थी, परंतु उसके हृदय में कितनी तड़प थी? उसे कौन समझ सकता है, वह तो पिता था।

नरेंद्र जल्दी-जल्दी चित्र बनाने लगा। जीवन भर चित्र बनाने में इतनी जल्दी उसने कभी न की। उसकी उँगलियों को किसी अज्ञात शक्ति से अपूर्व ताकत प्राप्त हो चुकी थी। रूपरेखा बनाते हुए उसने सुना, 'बेटा, ओ बेटा! बातें करो, जरा एक बार तुम देख तो लो?'

नरेंद्र ने अस्फुट स्वर में कहा, "उफ! यह असहनीय है।" और उसके हाथ से तूलिका छूटकर जमीन पर गिर पड़ी।

किंतु उस समय तूलिका उठाकर वह पुनः चित्र बनाने लगा। रह-रहकर लीला का वंक्तदन-रुदन कानों में पहुँचकर हृदय को छेड़ता और रक्त की गति को धीमा करता और उसके होंठ स्थिर होकर उसकी तूलिका की गति को रोक देते।

इसी प्रकार पल-पल बीतने लगे।

मुख्य द्वार के अंदर आने के लिए नौकरों ने शोर मचाना आरंभ कर दिया था, परंतु नरेंद्र मानो इस समय विश्व और विश्वयापी शोरगुल से बहरा हो चुका था।

वह कुछ भी न सुन रहा था। इस समय वह एक बार कमरे की ओर देखता और एक बार चित्र की ओर, बस रंग में तूलिका डुबोता और फिर कागज पर चला देता।

वह पिता था, परंतु कमरे के अंदर पत्नी के हृदय से लिपटे हुए मरे बच्चे की याद भी वह धीरे-धीरे भूलता जा रहा था।

अचानक लीला ने उसे देख लिया। दौड़ती हुई खिड़की के पास आकर दुखित स्वर में बोली, "क्या डॉक्टर को बुलाया? जरा एक बार आकर देख तो लेते कि मेरा लाल जीवित है या नहीं। यह क्या? चित्र बना रहे हो?"

चौंककर नरेंद्र ने लीला की तरफ देखा। वह लड़खड़ाकर गिर रही थी।

बाहर से द्वार खटखटाने और बार-बार चिल्लाने पर भी जब कपाट न खुले तो रसोइया और नौकर दोनों डर गए। वे अपना काम खत्म करके प्रायः संध्या समय घर चले जाते थे और प्रातःकाल काम करने आ जाते थे। रोजाना लीला-नरेंद्र दोनों में से कोई-न-कोई द्वार खोल देता था, आज चिल्लाने और खटखटाने पर भी द्वार न खुला। इधर रह-रहकर लीला की रोने की आवाज भी कानों में आ रही थी।

उन लोगों ने मुहल्ले के कुछ आदमियों को बुलाया। आखिर में सबने सलाह करके द्वार तोड़ डाला।

सब आश्चर्यचकित होकर मकान में घुसे। जीने से चढ़कर देखा कि दीवार का सहारा लिये, दोनों हाथ जंघाओं पर रखे नरेंद्र सिर झुकाए बैठा है।

उनके पैरों की आहट से नरेंद्र ने चौंककर मुँह उठाया। उसकी आँखें खून की तरह लाल थीं। थोड़ी देर पश्चात् वह ठहाका मारकर हँसने लगा और सामने लगे चित्र की ओर उँगली दिखाकर बोल उठा, "डॉक्टर-डॉक्टर! मैं अमर हो गया।"

@digitallibrary84

❑

दिन बीतते गए, प्रदर्शनी आरंभ हो गई।

प्रदर्शनी में देखने की कितनी चीजें थीं, परंतु दर्शक एक ही चित्र पर झुक पड़ते थे। चित्र छोटा था और अधूरा भी, उसका नाम था 'अंतिम प्यार'।

चित्र में चित्रित किया हुआ था, एक माँ बच्चे का मृत शरीर हृदय से लगाए अपने दिल के टुकड़े के चंदा से मुँह को बार-बार चूम रही है।

शोक और चिंता में डूबी हुई माँ के मुख, नेत्र और शरीर में चित्रकार की तूलिका ने ऐसा सूक्ष्म और दर्दनाक चित्र चित्रित किया कि जो देखता, उसी की आँखों से आँसू निकल पड़ते। चित्र की रेखाओं में इतनी ज्यादा सूक्ष्मता से दर्द भरा जा सकता है, यह बात इससे पहले किसी के ध्यान में न आई थी।

इस दर्शक-समूह में कितने ही चित्रकार थे। उनमें से एक ने कहा, "देखिए योगेश बाबू, आप क्या कहते हैं?"

योगेश बाबू उस समय मौन धारण किए चित्र की ओर देख रहे थे, सहसा प्रश्न सुनकर एक आँख बंद करके बोले, "यदि मुझे पहले मालूम होता तो मैं नरेंद्र को अपना उस्ताद बनाता।"

दर्शकों ने धन्यवाद, साधुवाद और वाह-वाह की झड़ी लगा दी; परंतु किसी को भी मालूम न हुआ कि उस सज्जन व्यक्ति की कीमत क्या है, जिसने इस चित्र को बनाया है।

किस प्रकार चित्रकार ने स्वयं को धूलि में मिलाकर खून से इस चित्र को रँगा है, उसकी यह हालत किसी को भी मालूम न हो सकी थी।

❑

@digitallibrary84

भाई-भाई

दम्मी-छदामी कोरी, दोनों भाई भोर होते ही जब हँसिया-गँड़ासा हाथ में पकड़े काम पर निकले, तब उन दोनों की घरवालियों में खूब जोर की जंग शुरू हो गई। आस-पास के लोग कुदरत, अनेक प्रकार की खटपट और शोर की भाँति इस घर के झगड़े और उससे पैदा हुए कोलाहल के आदी बन गए थे। जोर की चीख-पुकार और औरतों की गाली-गलौज कान में पड़ते ही लोग आपस में कहने लगते, "लो, हो गई शुरू।" यानी जैसी कि आशा थी, आज भी उस कुदरती सिद्धांत में कोई अंतर नहीं पड़ा। भोर होते ही पूरब में दिवाकर के उदय होने पर जैसे कोई उसका कारण पूछने की धृष्टता नहीं करता, ठीक वैसे ही कोरियों के इस घर में जब दोनों गृहिणियों में जंग और गाली-गलौज शुरू हो जाती तो फिर उसका कारण जानने के लिए आस-पास के किसी भी व्यक्ति को किंचित् मात्र भी आश्चर्य नहीं होता।

हाँ, इतना अवश्य है कि यह कलह या रोज-रोज का झगड़ा आस-पास के लोगों की अपेक्षा दोनों भाइयों को बहुत परेशान करता है; इस पर भी वे इसे विशेष परेशानियों में नहीं गिनते। उनके मानसिक भाव ऐसे हैं, मानो दोनों विश्व-यात्रा का लंबा सफर किसी इक्के में बैठकर काट रहे हैं और उसके बिना कमानी के पहियों के निरंतर घड़-घड़ शब्द को उन्होंने जीवन-यात्रा के विधि-विहित सिद्धांतों में ही मिला लिया है, अपितु घर में जिस दिन कोई शोरगुल नहीं होता, चारों ओर नीरवता सी छाई रहती है। उस दिन किसी प्रकार की मुसीबत आ जाए, इस बात पर कोई अनुमान भी नहीं कर सकता?

हमारी कहानी का कथानक जिस दिन से आरंभ होता है, उस दिन संध्या को दोनों भाई मेहनत-मजदूरी करके थके-माँदे जब घर लौटे तो देखा, घर में सन्नाटे का साम्राज्य है।

बाहर काफी गरमी है। दुपहरिया भर खूब जोर की गरमी रही और अब भी मेघ गरज रहे हैं। हवा का चिह्न तक भी नहीं। वर्षा से घर के चारों ओर का जंगल और घास आदि बहुत ऊँचे-ऊँचे हो गए हैं; वहाँ से पानी में डूबे हुए पटसन के खेत में से दुर्गंध-सी निकल रही है और उसने चारों ओर चारदीवारी सी खड़ी कर दी है। गुहाल के पास वाली छोटी सी तलैया में मेढक टर्रा रहे हैं और संध्या का निस्तब्ध गगन मानो झींगुरों की ध्वनि से बिलकुल पूर्ण सा हो गया है।

समीप में बरसाती नदी पद्मा नए-नए बादलों से घिरकर और भयानक रूप धारण करके आजादी का रसास्वादन कर रही है तथा अधिकांश खेती को

डुबोकर बस्ती की ओर मुँह बनाए बढ़ रही है। यहाँ तक कि उसने आस-पास के दो-चार आम, कटहल के वृक्षों को उखाड़कर धरा पर लिटा दिया है और उनकी जड़ें उसके पानी में से झलक रही हैं, मानो वे अपनी उँगलियों को गगन में फैलाकर किसी अंतिम अवलंब को पकड़ने का प्रयत्न कर रही हों।

दम्मी और छदामी, उस दिन गाँव में जमींदार के यहाँ गार में गए थे। उस पार की रेती पर धान पक गए हैं। वर्षा के पूर्व ही धान काट लेने के लिए देश के निर्धन किसान और मजदूर सब कोई अपने-अपने खेतों के काम पर पटसन काटने में लग गए हैं। केवल इन दोनों कोरियों को जमींदार के कारिंदे जबरदस्ती बेगारी में पकड़कर ले गए थे। जमींदार की कचहरी के छप्परों में से पानी टपक रहा था। उसकी मरम्मत के लिए और कुछ टट्टियाँ बनाने के लिए वे दोनों सारा दिन परिश्रम करते रहे। दो टूक पेट में डालने तक का मौका नहीं मिला। कचहरी की ओर से थोड़े से चने खाने को मिल गए थे। इसके अलावा हक की मंजूरी मिलनी तो दूर की बात, वहाँ उन्हें गालियाँ और फटकार ही मिलीं, वे उनकी मजूरी से कहीं ज्यादा थीं।

कीच-गारे में से किसी प्रकार निकल और पानी में होकर बड़ी मुश्किल से दोनों भाई संध्या समय पर घर पहुँचे, देखा तो, छोटी बहू चंदा छाती पर आँचल बिछाए चुपचाप औंधी पड़ी है। सावन की बदली की तरह उसने भी दिन भर अश्रु बहाकर आँखों को हलका किया है और अब शांत होकर हृदय को खूब गरम कर रखा है तथा बड़ी बहू अपना मुँह फैलाए द्वार पर बैठी थी, उसका डेढ़ साल का बच्चा बिलख रहा था। दोनों भाइयों ने जब घर में पैर रखा तो देखा कि बच्चा नंगा-धड़ंगा चौक में एक ओर औंधा पड़ा सो रहा है।

भूख से व्याकुल दम्मी ने घुसते ही कहा, "उठ, परोस खाने को।" बड़ी राधा एक साथ जोर से बोल उठी, मानो कागज के ढेर में कोई चिंगारी पड़ गई हो, बोली, "खाने को है क्या जो परोस दूँ? चावल तू दे गया था, मैं क्या खुद जाकर कमा लाती?"

सारे दिन की थकान और डाँट-फटकार सहने के बाद निराहार निरानंद अँधेरे में, जलती हुई जठराग्नि पर घरवाली के रूखे शब्द, विशेषकर आखिरी वाक्य का छिपा हुआ असंतोष दम्मी को सहसा न जाने कैसे सहन न हुआ? क्रोधित सिंह की तरह वह चिल्लाकर बोला, "क्या हुआ?"

इतना कहकर उसी क्षण हँसिया उठाकर घर वाली के सिर पर दे मारा। राधा अपनी देवरानी के पास जाकर गिर पड़ी और वहीं दम तोड़ दिया।

चंदा के वत्र खून से लथपथ हो गए; वह 'हाय अम्मा, क्या हो गया,' कहकर व्रंक्तदन कर उठी। छदामी ने आगे बढ़कर उसका मुँह दाब लिया। दम्मी हँसिया

फेंककर गाल पर हाथ रखे भौंचक्के की तरह पृथ्वी पर बैठ गया। बेटा जाग गया और भय के मारे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

बाहर का वातावरण तब तक पूर्ण रूप से शांत था। अहीरों के बालक गाय-भैंस चराकर गाँव को लौट रहे थे। उस पार की रेती पर जो लोग धान काटने गए थे, वे पाँच-पाँच सात-सात की टोली में एक छोटी सी नाव पर बैठकर, इस पार आकर अपनी मेहनत में दो-चार पूला धान का सिर पर लादे अपने-अपने घर में जा पहुँचे थे।

गाँव के रामलोचन चाचा डाकखाने में पत्र डालकर घर लौट आए थे और सब कामों से निबटकर चुपचाप बैठे तंबाकू का मजा ले रहे थे। एकाएक उन्हें याद आया कि उनके किसान दम्मी पर लगान के कुछ रुपए बाकी हैं, आज के दिन वह देने का वायदा कर गया था। यह सोचकर कि अब वह काम से लौट आया होगा, रामलोचन कंधे पर दुपट्टा डालकर और हाथ में छतरी ले उसके घर की ओर चल दिए।

दम्मी और छदामी के घर में घुसते ही उनके रोंगटे खड़े हो गए। देखा तो घर में दीया तक नहीं जल रहा था। आँगन अँधेरे से भरा हुआ था और उस अँधेरे में दो-चार काली छाया सी अस्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थीं। रह-रहकर बरामदे में से किसी के रोने की आवाज आ रही थी और कोई उसे रोकने का प्रयत्न कर रहा था।

रामलोचन ने तनिक शरमाते हुए पूछा, "दम्मी है क्या?"

दम्मी एक प्रतिमा के समान चुपचाप बैठा था। अपना नाम सुनते ही वह सिसक-सिसककर अबोध बालक की तरह रोने लगा। छदामी झटपट बरामदे में से उतरकर रामलोचन चाचा के पास आँगन में आ खड़ा हुआ। रामलोचन ने पूछा, "औरतें कलह करके मुँह फुलाए पड़ी होंगी, इसी से अँधेरा है, क्यों? आज तो दिन भर चिल्लाती ही रही हैं।"

छदामी अभी तक क्या करना चाहिए, इस निर्णय पर नहीं पहुँच पाया था। अनेक प्रकार की असंभव कल्पनाएँ उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थीं। अभी तक वह इस निश्चय पर पहुँचा था कि कुछ रात बीते, लाश को कहीं गायब कर देगा। इस बीच में चौधरी चाचा जान आ टपके, जिसकी उसे स्वप्न में भी आशा न थी। तुंत ही उसे कोई जवाब न सूझा, कह बैठा, "हाँ, आज बहुत झगड़ा हो गया।"

चौधरी रामलोचन बरामदे की ओर बढ़ते हुए बोले, "इसके लिए दम्मी क्यों आँसू बहा रहा है?"

छदामी ने देखा कि अब बचने की कोई आशा नहीं, तो कह उठा, "लड़ते-लड़ते छोटी बहू ने बड़ी बहू के माथे पर हँसिया मार दिया है।"

इनसान आई हुई मुसीबत को ही बड़ा समझता है, उसके अलावा और भी कोई मुसीबत आ सकती है, यह बात शीघ्र ही उसके दिमाग में नहीं घुस पाती। छदामी उस समय इसी सोच में पड़ा हुआ था कि इस भयानक सजाई के पंजे से कैसे छुटकारा मिले? लेकिन झूठ उससे भी बढ़कर मुसीबत खड़ी कर सकता है, इस बात का उसे तनिक भी ध्यान न था। रामलोचन के पूछते ही तुंत उसके दिमाग में जो उत्तर सूझा, वही उसने कह डाला। रामलोचन ने चौंककर पूछा, "ऐं, क्या कहा! मरी तो नहीं?"

छदामी ने उत्तर दिया, "मर गई!" इतना कहकर उनके पाँवों पर गिर पड़ा।

चौधरी महाशय बड़े असमंजस में फँस गए। सोचा कि भगवान ने न जाने संध्या समय कौन सी मुसीबत में फँसा दिया? कचहरी में गवाही देते-देते प्राण खुश्क हो जाएँगे। छदामी ने किसी प्रकार भी उनके चरणों को नहीं छोड़ा, बोला, "चौधरी चाचा, अब मैं बहू को बचाने के लिए क्या करूँ?"

अभियोग के विषय में परामर्श देने में चौधरी रामलोचन गाँव भर के प्रधानमंत्री थे। उन्होंने तनिक विचारकर कहा, "देख एक काम कर, तू अभी दौड़ जा थाने में, कहना कि मेरे बड़े भाई दम्मी ने शाम घर आकर खाने को माँगा था। खाना तैयार नहीं था, सो उसने अपनी बहू के माथे पर हँसिया मार दिया। मैं ठीक बता रहा हूँ। ऐसा करने से तेरी बहू बच जाएगी।"

छदामी का कंठ सूखने लगा, उठकर बोला, "चौधरी चाचा, बहू तो और मिल जाएगी, लेकिन भाई को फाँसी हो जाने पर फिर भाई नहीं मिल सकेगा।" जब उसने अपनी घरवाली के माथे पर दोष मढ़ा था तब उसने यह बातें नहीं सोची थीं। भय के कारण एक बात मुँह से निकल गई, अब अलक्षित विचारों से उसका मन अपने लिए युक्तियाँ एकत्रित करने लगा।

चौधरी ने भी उसकी बात को युक्तिसंगत माना, बोले, "तब फिर जैसा हुआ है वैसा ही कहना, सब ओर से बचाव होना तो बहुत कठिन है छदामी।" इतना कहकर रामलोचन वहाँ से चल दिए और देखते-देखते सारे गाँव में इस बात की चर्चा हो गई कि कोरियों के घर की छोटी बहू ने गुस्से में बड़ी बहू के हँसिया दे मारा है।

बाँध टूटने पर जैसे ही बाढ़ आ जाती है, उसी प्रकार कोरियों के घर पुलिस आ धमकी। अपराधी और निरपराधी उन्हें देखकर घबरा उठे।

❑

छदामी ने निर्णय किया कि जिस राह को अपनाया है, उसी पर चलना ठीक होगा, क्योंकि उसने चौधरी चाचा के सामने जो बात कह डाली है, उसे गाँव का बच्चा-बच्चा जान गया है। अब यदि और कोई बात कही जाए तो न जाने उसका नतीजा क्या निकले?

@digilibrary84

उसकी बुद्धि मारी गई। उसने अपनी बहू से अनुरोध किया कि वह इस बात को अपने ऊपर ले ले। सुनते ही उस पर मानो ज्वालामुखी का पहाड़ फूट पड़ा। उसने धीरज बँधाते हुए कहा, "अरी पगली! ऐसा करने में किसी बात का डर नहीं है, हम लोग तुझे जरूर बचा लेंगे।" धीरज बँधा तो सही, पर उसका गला सूख गया और चेहरे का रंग पीला पड़ गया।

चंदा की आयु सत्रह-अठारह वर्ष के लगभग होगी। चेहरा भरा हुआ और गोल-मटोल, बदन मँझोला और गठा हुआ, अंग-प्रत्यंग सौष्ठव से परिपूर्ण, चाल अति सुंदर, आस-पास के लोगों के घर जाकर गप-शप करना उसकी दिनचर्या है और बगल में पानी की गागर लिये पनघट जाते समय वह दो उँगलियों से अवगुंठन में तनिक-सा छिद्र करके चमकीली चंचल काली आँखों से जो कुछ देखने लायक वस्तु होती है, उसे देख लिया करती है।

बड़ी बहू ठीक इससे उल्टी थी, आलसिन, फूहड़ और बेशऊर। सिर का कपड़ा, गोद का बच्चा, घर का काम कुछ भी उससे न सँभलता था। हाथ में न तो कोई खास काम-काज होता और न फुरसत। छोटी बहू उससे अधिक कुछ कहती-सुनती न थी। हाँ, मीठे स्वर में ही दो-एक पैने दाँत गड़ा देती और हाय-हाय, ही-ही करके क्रोध में बकती-झकती रहती, इस प्रकार मुहल्ले भर की नाक में दम करती रहती।

पर इन दो गृहस्थियों में भी स्वभाव की आश्चर्यजनक एकता थी। दम्मी देह में कुछ लंबा-चौड़ा, हट्टा-कट्टा है, चौड़ी हड्डियों, भद्दी नासिका, दुनिया से अनभिज्ञ आँखें। ऐसा भोला-भाला किंतु भयानक आदमी कोई विरला ही होगा।

और छदामी ऐसा लगता था जैसे किसी काले पत्थर को बड़ी मेहनत से कोंदकर कोई प्रतिमा तैयार की गई हो।

तनिक भी कहीं बाहुल्य एवं समानता नहीं, उसका प्रत्येक अंग स्थूल एवं शक्ति से परिपूण था। चाहे तो ऊँची से ऊँची चट्टान से नीचे कूद पड़े, चाहे किसी पेड़ की टहनियों को एकदम खाक कर दे, हरेक कार्य में उसके चातुर्य की स्पष्ट झलक दिखाई देती थी। वह बड़े-बड़े काले बालों को तेल में डुबो जतन से कंधे तक लटकाए रहता था। इससे स्पष्ट था कि वह अपनी देह की सजावट में विशेष ध्यान रखता है।

और और ग्रामवासियों के सौंदर्य की ओर से वास्तव में वह उदासीन न था, फिर भी वह अपनी घरवाली को बहुत चाहता था। दोनों में झगड़ा भी होता और मेल-जोल भी, कोई किसी को हरा नहीं पाता था? दोनों ही अपने दावों को खेलते हुए जीवन की डगर में आगे बढ़े चले जा रहे थे।

इस दुर्घटना के कई दिन पहले से दंपती में बहुत अधिक तनातनी चल रही थी। बात यह थी कि चंदा ने देखा कि उसका घरवाला काम के बहाने कभी-

कभी दूर चला जाता है, यहाँ तक कि दो-एक दिन बाहर बिताकर घर लौटता है और कुछ कमा-धमाकर लाता नहीं। उसके बुरे लक्षणों के कारण वह उस पर कड़ी नजर रखने लगी और ज्यादती भी करने लगी। उसने भी पनघट पर चक्कर काटने शुरू कर दिए और मोहल्ले भर में अच्छी तरह घूम-फिरकर घर आकर काशीप्रसाद के मँझले बेटे की बहुत प्रशंसा करने लगी।

इससे परिणाम यह निकला कि छदामी के दिन और रातों में मानो किसी ने विष घोल दिया। काम-धंधों में उसे पल भर के लिए चैन नहीं पड़ता। इसके लिए उसने एक बार भाभी को खूब डाँटा-फटकारा। जवाब में भाभी ने खूब हाथ हिलाकर, झमक-झमककर उसके स्वर्गीय बाप को संबोधन करके कहना शुरू कर दिया, "वह औरत आँधी के आगे-आगे भागती है, उसे मैं सँभालूँ। मैं तो सबकुछ समझती हूँ, किसी दिन खानदान की आबरू मिट्टी में मिला देगी!"

बगल के कोठे में चंदा बैठी थी। उसने बाहर आकर धीमे स्वर में कहा, "दीदी, तुम्हें इतना डर क्यों है?" बस फिर क्या था, दोनों में महाभारत छिड़ गई।

छदामी ने गुर्राकर कहा, "देख, अब की अगर सुना कि तू अकेली पनघट पर गई है तो तेरी हड्डी-पसली एक कर दूँगा।"

चंदा ने भभककर कहा, "तब तो मेरा कलेजा ही ठंडा हो जाएगा।" और कहती हुई वह बाहर जाने को तैयार हो गई।

छदामी ने उसकी चुटिया घसीटकर उसे कोठे के भीतर धकेल दिया और बाहर से दरवाजे में ताला डाल दिया।

संध्या समय जब छदामी घर लौटा तो देखा कि कोठा खुला पड़ा है, उसमें कोई भी नहीं है। चंदा तीन गाँव लाँघकर सीधी अपनी नानी के घर पहुँच गई है।

छदामी बड़ी मुश्किल से घरवाली को मनाकर वहाँ से वापस ले आया और इस बार उसने हार मान ली। फिर उसने किसी प्रकार की उससे जबरदस्ती नहीं की, लेकिन उसका मन अशांत रहने लगा। घरवाली के प्रति शंका के भाव उसके हृदय में शूल बनकर गड़ने लगे और जब कभी वह उसकी तीव्र पीड़ा से अधिक बेचैन हो जाता तो उसकी इच्छा होती कि काश, यह मर जाए तो पिंड छूटे। इनसान से इनसान को जितनी ईर्ष्या या जलन होती है उतनी संभवतः यमराज को भी नहीं।

इसी बीच घर में यह दुर्घटना घट गई।

चंदा से जब उसके घरवाले ने हत्या का दोष ले लेने के लिए कहा तो वह भौंचक्की होकर देखती रह गई, उसकी कजरारी आँखें अग्नि के समान छदामी को जलाने लगीं। उसका शरीर और मन संकुचित होकर इस राक्षस के पंजे से निकलकर भागने का प्रयत्न करने लगा। उसकी अंतर्रात्मा विमुख होकर अपने ही घरवाले के प्रति विद्रोह कर बैठी।

@digitallibrary84

छदामी ने बहुतेरा उसको ढाढ़स बँधाया कि तेरे डरने की कोई बात नहीं है। इसके बाद थाने और अदालत में जज के सामने उसे क्या कहना होगा, बार-बार सिखा-पढ़ाकर सब ठीक-ठाक कर दिया, लेकिन चंदा ने लंबा-चौड़ा उसका व्याख्यान बिलकुल भी नहीं सुना, वह पाषाण-प्रतिमा के समान वहाँ चुपचाप बैठी रही।

सभी कामों में दम्मी छदामी के भरोसे रहता है। छदामी ने जब चंदा पर सारा दोष गढ़ने की बात कही, तो दम्मी ने पूछा, "फिर बहू का क्या होगा?"

छदामी ने कहा, "उसे मैं बचा लूँगा।"

भाई की बात सुनकर हाँ-हाँ कर दम्मी निश्चिंत हो गया।

छदामी ने चंदा को सिखा दिया था कि तू कहना, "दीदी मुझे हँसिया लेकर मारने आई थीं, सो मैं भी हँसिया ले उसे रोकने लगी, अचानक वह उसके लग गया।" ये सब बातें चौधरी रामलोचन की बनाई हुई थीं। इनके अनुकूल जिन-जिन बातों और सबूतों की आवश्यकता थी, वे सब बातें भी उन्होंने विस्तार से छदामी को समझा दी थीं।

पुलिस ने आकर जोरों से तहकीकात करनी शुरू कर दी। लगभग सभी आस-पास के लोगों के मन में यह बात घर कर गई थी कि चंदा ने ही जिठानी की हत्या की है। सभी गाँव वालों के बयानों से ऐसा ही सिद्ध हुआ। पुलिस की ओर से चंदा से जब पूछा गया तो उसने कहा, "हाँ, मैंने ही खून किया है।"

"क्यों खून किया?"

"मुझसे वह डाह रखती थी।"

"कोई झगड़ा हुआ था?"

"नहीं।"

"वह तुम्हें पहले मारने आई थी?"

"नहीं।"

"तुम पर किसी किस्म का अत्याचार किया था?"

"नहीं।"

इस प्रकार का उत्तर सुनकर सब देखते रह गए।

छदामी एकदम घबरा गया, बोला, “यह ठीक नहीं कह रही है। पहले बड़ी बहू...।”

थानेदार ने उसे डाँटकर चुप करा दिया। अंत तक अनेक बार जिरह करने पर भी वही एक प्रकार का उत्तर मिला। बड़ी बहू की ओर से किसी प्रकार का हमला होना चंदा ने किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया।

ऐसी जिद्दी औरत शायद ही कहीं देखने में आती हो। वह तो जी-जान से कोशिश करके फाँसी के तख्ते की ओर झुकी जा रही है, किसी भी तरह रोके नहीं रुकती। यह कैसा रूठना है? चंदा शायद मन-ही-मन कह रही थी कि मैं तुम्हें छोड़कर अपनी इस जवानी को लेकर फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाऊँगी, फाँसी की रस्सी को गले लगाऊँगी, मेरे इस जन्म का आखिरी बंधन उसी के साथ है।

बंदिनी होकर चंदा, फिर परिचित गाँव के रास्ते से, जगन्नाथ जी के शिवालय के पास से, बीच बाजार से, घाट के वट से, मजमूदारों के घर के सामने से, डाकखाना और स्कूल के बगल से, सभी परिचित लोगों की आँखों के सामने से कलंक का दाग माथे पर लगाकर सदैव के लिए घर छोड़कर चली गई। गाँव के बालकों का एक झुंड पीछे-पीछे चला जा रहा था और गाँव की औरतें, उसकी सखी-सहेलियाँ, कोई घूँघट की सेंध में से, कोई दरवाजे की बगल में से और कोई वृक्ष की ओट में से सिपाहियों से घिरी चंदा को जाती देख लज्जा से, घृणा से और भय से रोमांचित हो उठीं।

डिप्टी मजिस्ट्रेट के सामने चंदा ने अपना ही दोष स्वीकार किया और दुर्घटना से पहले बड़ी बहू ने उस पर किसी प्रकार की ज्यादती या जुल्म किया था, यह बात उसके मुँह से किसी भी प्रकार निकली ही नहीं।

पर छदामी उस दिन गवाह के कचहरी पहुँचते ही रो दिया और हाथ जोड़कर बोला, “दुहाई है हुजूर, मेरी बहू का कोई कसूर नहीं?” हाकिम ने रोबीले स्वर में उसे रोककर प्रश्न पर प्रश्न करना शुरू किया। उसने एक-एक करके सारी की सारी वारदात कह सुनाई।

पर हाकिम ने उसकी बात का विश्वास नहीं किया। कारण, गाँव के चौधरी रामलोचन ने गवाह के रूप में कहा, “खून होने के थोड़ी देर बाद मैं इनके घर पहुँचा था। गवाह छदामी ने सब बातें कबूल करके मेरे पैरों में गिरकर कहा था कि बहू को किस प्रकार बचाऊँ, कोई सलाह दीजिए। गवाह ने मुझसे कहा कि मैं यदि कहूँ कि मेरे बड़े भाई ने खाने को माँगा था, सो उसने दिया नहीं, इस पर गुस्से में आकर भाई ने अपनी घरवाली पर हँसिया का वार किया, जिससे उसने उसी समय दम तोड़ दिया, तो वह बच जाएगा।” मैंने कहा, “खबरदार हरामजादे, अदालत में एक कथन भी झूठ का न बोलना, इससे बढ़कर महापाप और नहीं है।”

रामलोचन ने पहले चंदा को बचाने के लिए बहुत सी बातें बना ली थीं, किंतु जब देखा कि चंदा खुद ही अड़कर फँस रही है, तब सोचा कि कहीं मुझे ही झूठे जुल्म की गवाही में न फँसना पड़े। इससे जितना जानता हूँ, उतना ही कहना अच्छा है। यह सोचकर उन्होंने उतना ही कहा और उस कहने में किसी प्रकार की कोई कसर उठाकर न रखी।

डिप्टी मजिस्ट्रेट ने इस केस को सेशन के सुपुर्द कर दिया।

इस बीच में खेतीबाड़ी, हाट, बाजार, रोना-हँसना आदि संसार के सभी काम चलने लगे। पहले के समान सारे धान के खेतों में सावन के मेघ बरस उठे।

पुलिस मुल्जिम और गवाहों को लेकर सेशन जज की अदालत में पहुँची। इजलास लगा हुआ था। बहुत से लोग अपने-अपने मुकदमे की पेशी की इंतजारी में बैठे थे। कोई मुकदमा चल रहा था। छदामी ने खिड़की में से झाँककर रोजमर्रा की इस आकुल-व्याकुल दुनिया को एक नजर देखा। सबकुछ उसे सपना मालूम हुआ। अदालत के अहाते के भीतर के वट वृक्ष पर से एक कोयल कूक उठी।

अपनी पेशी पर चंदा से झुँझलाकर जज ने कहा, "तुम जिस दोष को अपने सिर पर ले रही हो, उसकी सजा जानती हो, क्या है?"

चंदा ने कहा, "नहीं।"

जज ने मुसकराते हुए कहा, "फाँसी यानी मौत।"

उसे सुनते ही चंदा के होश उड़ गए। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "साहब, आपके पैरों पड़ती हूँ, मुझे यही सजा दो, मुझसे अब दुनिया की बातें सही नहीं जातीं।"

जब छदामी को अदालत में पेश किया गया तो चंदा ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया।

जज ने पूछा, "गवाह की ओर देखकर बताओ, यह तुम्हारा कौन लगता है?"

चंदा ने अपने मुँह को हाथों से ढककर कहा, "यह मेरा घरवाला है, साहब?"

जज, "तुम्हें यह चाहता है?"

चंदा, "बहुत ज्यादा हुजूर!"

जज, "तुम उसे नहीं चाहती क्या?"

चंदा, "बहुत ज्यादा चाहती हूँ, हुजूर।"

तभी छदामी ने बीच में ही कहा, "हुजूर, खून तो मैंने किया है।"

जज ने प्रश्न किया, "क्यों?"

छदामी ने कहा, "खाने को माँगा था, सो उसने दिया नहीं।" दम्मी जब गवाही देने आया तो बेहोश होकर गिर पड़ा।

होश आने पर उसने कहा, "हुजूर! खून तो मैंने किया है।"

@digilibrary84

“क्यों?”

“खाने को माँगा था, सो उसने दिया ही नहीं।”

बहुत जिरह और गवाहों के बयान के बाद जज ने साफ-साफ समझ लिया कि घर की बहू को फाँसी से बचाने के लिए दोनों भाई कसूर कबूल कर रहे हैं। लेकिन चंदा थाने से लेकर सेशन अदालत तक एक ही बात बराबर कहती आ रही थी। उसकी बात में तनिक भी कहीं अंतर नहीं पड़ा। दो वकीलों ने स्वतः प्रवृत्त होकर उसे फाँसी के फंदे से बचाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन अंत में हार माननी पड़ी।

जिस दिन तनिक सी आयु में एक काली-काली छोटी-मोटी लड़की अपना गोल-मोल चेहरा लिये, गुड्डा-गुड़िया फेंककर, अपने माता-पिता का संग छोड़कर ससुराल आई थी, उस दिन रात को शुभ लग्न के वक्त आज दिन की कौन सोच सकता था? उसके पिता ने अंतिम समय में यह कहा था कि खैर, कुछ भी हो मेरी लड़की तो ठीक ठिकाने से लग गई।

फाँसी से पूर्व जेलखाने में सिविल सर्जन ने चंदा से पूछा, “किसी को देखने की इच्छा हो तो बोलो?”

चंदा ने उत्तर दिया, “बस एक बार अपनी माँ को देखना चाहती हूँ।”

सिविल सर्जन ने पुनः कहा, “तुम्हारा घरवाला तुम्हें मिलना चाहता है, उसे बुलवा लिया जाए?”

चंदा ने उद्विग्न होकर कहा, “उहूँ-हूँ, मौत भी नहीं आई।”

❑

@digitallibrary84

कंचन

मैं विदेश लौटकर छोटा नागपुर के एक चंद्रंशीय राजा के दरबार में नौकरी करने लगा। उन्हीं दिनों मेरी देशव्यापी कीर्ति की पटल पर अचानक एक छोटी सी कहानी खिल उठी। उन दिनों गगन टेसू की रक्तिम आभा से विभोर था। शाल वृक्ष की टहनियों पर मंजरियाँ झूल रही थीं। मधुमक्खियों के समूह मँडराते फिर रहे थे। व्यापारी लोगों का लाख-संग्रह का समय आ गया था। बेर और शहतूत के पत्तों से रेशम के कीड़े इकट्ठð किए जा रहे थे। संथाल जाति महुए बीनती हुई फिर रही थी। नूपुर की झंकार के समान गूँजती हुई नदी वहीं पर बही जा रही थी। मैंने स्नेह से उसका नाम रखा था-'तनिका'।

उस समय का वातावरण अनोखे आवेश से परिपूर्ण था। उसका मेरे मन पर भी अधिकार हो गया था, जिससे कार्य की गति मंथर पड़ गई थी, तब मैं अपने पर ही खीझ उठा था।

दिन ढल रहा था। एक स्थान पर दोआबा बनाती हुई नदी दो शाखाओं में विभक्त होकर चली गई है। उसी बालू के टीले पर बगुलों की पंक्ति शांत बैठी थी। अपनी झोली में रंग-बिरंगे पत्थरों को भरे मैं कोठी को लौट रहा था, यह सोचकर कि अपनी विज्ञान-शाला में इनकी परीक्षा करूँगा। निर्जन वन में अकेले आदमी का समय काटना कठिन सा हो जाता है; अतः मैंने संध्या के बाद का समय प्रयोग के लिए नियत कर लिया है। डायनुमा द्वारा बिजली की रोशनी कर बैठ जाता हूँ, नाना प्रकार के रासायनिक द्रव्य, माइक्रोस्कोप और तराजू लेकर। इसी प्रकार बैठे-बैठे कभी-कभी आधी रात हो जाती है। मुझे आज विशेष खोज के बाद 'मेगनीज' के चिह्नों का आभास मिला था, इसलिए मेरी वापसी आज विशेष उत्साह के साथ हो रही थी। उस वातावरण में कौए काँव-काँव करते हुए सिर पर से अपने-अपने नीड़ों की ओर बढ़े जा रहे थे।

इसी समय मेरे सम्मुख आकर एक बाधा खड़ी हो गई। उस निर्जन पथ के एक टीले पर पाँच साल वृक्षों का एक व्यूह जैसा खड़ा था। उसके झुरमुट में बैठे हुए व्यक्ति को केवल एक ही ओर संधि से देखा जा सकता था। उस समय मेघों के अंतराल से एक आश्चर्यमयी दीप्ति फूटकर निकल रही थी। उस छायामय वातावरण के भीतर गगन की लालिमा मानो किसी दिवंगना के खुले आँचल से गिरने वाले स्वर्ग की तरह छितरा रही थी। उसी विशेष ज्योति के पथ पर वह कोमलांगी बैठी थी। उस पेड़ के तने से टिककर दोनों पैरों को छाती के समीप समेटे वह मन लगाकर कुछ लिखे जा रही थी।

मैं वृक्ष की आड़ में खड़ा-खड़ा केवल उसकी ओर ताकता भर रहा। हृदय कितने ही चक्कर काटकर प्रवेश-द्वार तक आ पहुँचा था, किंतु मैं सदैव ही उससे खिसक जाता था। लेकिन आज ऐसा जान पड़ा, मानो जीवन के किसी चरम संघर्ष में आ गया हूँ। यह कैसे हो गया, उसका मुझे पता नहीं। मैं तो सदैव से अपने को पर्वत की तरह नीरस समझता आया था। अनायास ही भीतर से एक झरना फूट पड़ा।

उस बाला को भी मेरे खड़े होने का कुछ आभास-सा हो गया। उसने लिखना बंद कर दिया, किंतु उठ न सकी। मैंने सोचा कि कहूँ, "क्षमा कीजिए! किंतु कैसी क्षमा? मैंने ऐसा कौन सा दंडनीय कार्य किया था?"

यही सोचता हुआ मैं अपनी कोठी की ओर बढ़ा चला आ रहा था, तभी मेरी दृष्टि नीचे पड़े दो टुकड़ों में फटे हुए किसी पत्र के लिफाफे पर जा पड़ी। मैंने उठाकर देखा-नाम, भवतोष मजूमदार, आई.सी.एम., मुकाम छपरा हाथ की लिखावट लड़कियों जैसी, टिकट लगा हुआ था, लेकिन उस पर डाकखाने की मोहर नहीं। मेरी अक्ल ने झट समझ लिया कि फटे पत्र के लिफाफे पर किसी दुखांत का क्षत-चिह्न विद्यमान है और मैंने उस लिफाफे के रहस्य को जानने का भी संकल्प कर लिया।

जियोलॉजी के अध्ययन-अभ्यास के साथ भीतर-ही-भीतर इस रहस्योद्घाटन का काम भी चल रहा था, जिस समय मैंने कुसुमित साल वृक्षों की छाया और प्रकाश के बंधन में कंचन को देखा था। इसमें कोई शक नहीं कि इससे पूर्व भी बंगाली बाला को निहारा था, किंतु इस स्वतंत्र और एकांत वातावरण में देखने का अवसर कभी नहीं मिला। यहाँ उसकी सलोनी देह की कोमलता के साथ वन के फूल ने अपनी भाषा का स्वर मिला दिया। विदेशी कोमलांगियों के दर्शन तो बहुत किए थे, संभवतः वे भली भी लगी थीं, किंतु बंगाली बाला को पहली बार ही इस प्रकार देखा कि उसकी समग्रता को उपलब्ध किया जा सके। उसे देखकर यह प्रतीत नहीं होता कि उसका संबंध किताबों से छूटा या नहीं।

बहुत दिन पहले, बाल्यावस्था में किन्हीं बसु महाशय का जो गीत मैंने सुना था और जिसे सुनकर भी भुला दिया था, न जाने क्यों ऐसा जान पड़ा कि उस राग की सहज संगिनी में इसी बंगाली लड़की के रूप की जो भूमिका व्यंजित है, वह आज मेरी आँखों के समक्ष साकार हो उठी है।

जियोलॉजी शास्त्र में पढ़ा था कि पृथ्वी के नीचे छुपी हुई आग्नेय सामग्री सहसा तेज भूंप से आंदोलितावस्था में ऊपर आ जाती है। आज अपने ही निम्न स्तर के अंधकार में छुपी हुई उसी तपी-भली सामग्री को सहसा ऊपर के प्रकाश में देखा। कठोर विज्ञानी नवीनजी माधव के अंतस्थल में इस आंदोलितावस्था की मैंने कभी आशा नहीं की थी।

@digitallibrary84

पता लग गया कि प्रतिदिन तीसरे पहर जब इसी मार्ग से काम से लौटा करता तो वह कुछ विशेष दृष्टि से देखा करती, पर उसकी दृष्टि में क्या है, यह अब तक मैं समझ नहीं सका था? कभी-कभी मैं मार्ग चलता हुआ पीछे की ओर मुड़कर देख लेता तो ऐसा लगता, कंचन मेरे ओझल होने के मार्ग की ओर देख रही है। मुझे मुड़ता देख वह अपनी दृष्टि घुमाकर उन कागजों की ओर कर लेती, जिन पर बैठी वह लिखा करती थी।

मेरे विज्ञानी मन को ऐसा लगा कि वह किसी को पाने के लिए इतना कठोर व्रत कर रही है। भवतोष विलायत से लौटकर छपरा में असिस्टेंट मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हो गया है। विलायत जाने से पूर्व इन दोनों में यही रहते समय गंभीर प्रणय हो गया था, परंतु अब पद की नियुक्ति के बाद कोई विशेष विप्लव घट चुका है। असल बात क्या है? इसकी तो जानकारी करने से ही पता लगेगा।

मेरे लिए जानकारी करना कोई कठिन कार्य नहीं था, क्योंकि मेरे सहपाठी बंकिम बाबू पटना विश्वविद्यालय में काम करते थे। उनको पत्र लिखकर डाल दिया, "बिहार की सिविल सर्विस में कोई भवतोष महाशय हैं। मेरे किसी मित्र ने अपनी लड़की के लिए इन्हें पसंद किया है। इस कार्य में मेरा सहयोग चाहते हैं। रास्ता पथरीला तो नहीं, इसका पूरा पता लगाकर मुझे लिखो तो मैं आभारी रहूँगा। उन महाशय का विवाह के लिए क्या मत है, यह भी लिखिए?"

पत्र का उत्तर मिला, "रास्ता पथरीले से भी अधिक बढ़कर है। उसकी राय के विषय में सुनो! जब मैं कॉलिज में डॉ. अनिल कुमार का छात्र था, जितना साधारण उनका पांडित्य था, उतना ही सरल उनका हृदय। उनकी नातिन को देखो तो पता लगेगा कि सरस्वती देवी ने उनकी साधना से संतुष्ट होकर, उनके बुद्धि-लोक को ही प्रकाशित नहीं किया बल्कि वह रूप-सुधा को लेकर उनकी गोदी में आ गई है। तुम्हारा शैतान भवतोष उनके इसी स्वर्गलोक में न जाने कहाँ से आन पड़ा? उसकी बुद्धि प्रखर थी और वाक्तपटुता में वह निपुण। पहले धोखा खाया डॉक्टर साहब ने और बाद में उनकी नातिन ने। विवाह संबंध निश्चित हो चुका था, प्रतीक्षा थी भवतोष की विलायत से लौटने की। वहाँ का सारा खर्च डॉक्टर साहब ने दिया था। सिविल सर्विस की परीक्षा पास करके जब वह भारत आया और यहाँ के किसी उच्च पदाधिकारी की कन्या से विवाह कर लिया। उसके इन कुकृत्य और लज्जा से क्षुब्ध होकर डॉक्टर साहब नौकरी को तिलांजलि देकर अपनी नातिन के साथ कहाँ चले गए, इसका कुछ पता नहीं।"

पत्र को पढ़कर कंचन की परिस्थिति का पूर्ण आभास हुआ। तभी दृढ़ संकल्प किया कि उसको लज्जा और अवसाद से मुक्त करूँगा।

दिवाकर अस्ताचल की ओर जा रहे थे। संध्या अपना आवरण फैला रही थी। यह समय कंचन का घर लौटने का होता था। तभी कोई गँवार उसके हाथ से

लिखे हुए पृष्ठ छीनकर भाग खड़ा हुआ। मैंने उसका पीछा किया और उन पृष्ठों को पाने में सफल हो गया। मैंने वे सब कंचन को लौटा दिए। अपनी संपत्ति को वापस आया देख कंचन ने स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा, "सौभाग्य से आप...।"

मैंने कहा, "भाग चले थे कि वह आया...।"

"इसका आशय?"

"स्पष्ट है।"

"मैं नहीं समझी।"

"यही कि उसकी सहायता से आपके साथ ही पहली बात हो गई। इससे पूर्व वही सोचता रहता था कि कैसे और क्या बोलूँ?"

"किंतु वह तो एक...।"

"क्या एक?"

"डाकू।"

"नहीं, वह डाकू नहीं, वह मेरा ही सिपाही था।"

कंचन अपने गहरे रंग की साड़ी का छोर पकड़, अपने मुँह पर रख खिलखिलाकर हँस पड़ी। हँसी के रुकते ही उसने कहा, "काश, यह सच होता तो बड़ा मजा आता।"

"जिसके यहाँ डाका पड़ा उसको।"

"उद्धार करने वाले के लिए क्या होगा?"

"उसे घर पर ले जाकर चाय पिला देती।"

"और इस नकली उद्धारकर्ता का क्या होगा?"

"उसने जो चाहा था, मिल गया।"

"क्या मिल गया?"

"परिचय की पहली बात और क्या?"

"बस।"

"हाँ।"

"मैं चाहता हूँ।"

"क्या चाहते हैं आप?"

"बातों का क्रम अब समाप्त न हो जाए।"

"समाप्त कैसे होगा?"

"अच्छा, यदि आप होतीं तो पहली बात आप क्या कहतीं?"

"मैं तो केवल यही पूछती कि सड़कों पर से पत्थर चुनने में लड़कपन नहीं लगा आपको?"

"फिर आपने पूछा क्यों नहीं?"

@digilibrary84

“डर लगता था।”

“डर! मुझसे?”

“हाँ, दादू से सुना था कि आप बड़े विद्वान् हैं। उन्होंने विलायत से छपा हुआ आपका लेख पढ़ा था। उन्होंने उसे समझाने का प्रयत्न किया, पर मैं समझ न सकी।”

तभी किसी की आवाज सुनाई दी, “दीदी कहाँ हो तुम? अँधेरा हो गया है। आजकल समय अच्छा नहीं है।” डॉक्टर साहब के उपस्थित होते ही मैंने उनके चरणों की धूल लेकर प्रणाम किया। वे तनिक सहम गए। परिचय दिया, “मेरा नाम नवीन माधव सेन गुप्त है।”

उसे सुनकर वृद्ध डॉक्टर का मुख उज्ज्वल हो उठा, बोले, “क्या कहते हो? आप ही डॉक्टर सेन गुप्त हैं? आप तो बच्चे हैं।”

मैंने उत्तर दिया, “अभी बच्चा ही हूँ, मैंने अभी छत्तीस को पार किया है।”

“आपको हमारे यहाँ चलना होगा।”

“इसके लिए कहना न पड़ेगा दादू; ये तो पहले ही चलने के लिए मुँह धोए बैठे हैं।”

मैंने मन-ही-मन कहा, ‘अनर्थ हो गया! कैसी शरारत की है कंचन ने?’

डॉक्टर साहब ने उत्साहित स्वर में कहा, “आपको शायद देश और काल की...।”

“नहीं, नहीं! मैं इन चीजों को कुछ भी नहीं समझता! मुझे समझाने में आपका समय ही बरबाद होगा।”

“समय! यहाँ समय का अभाव ही क्या है? अच्छा, आज भोजन हमारे ही यहाँ करें।” मैं धन्यवाद करने ही जा रहा था कि कंचन बोल उठी, “दादू! हरेक को न्योता देकर मुझे मुश्किल में डाल देते हो। भला इस जंगल में फिरंगी की दुकान कहाँ मिलेगी? ये विलायत के ‘डिनर’ खाने वाली जाति से संबंधित इनसान हैं। व्यर्थ में अपनी नातिन को बदनाम करना चाहते हो?”

“अच्छा, अच्छा तो कब आपको सुविधा होगी, बताइए?” वृद्ध महाशय पूछ उठे।

“मेरी सुविधा तो कल ही हो सकती है; परंतु मैं कंचन देवी को परेशान नहीं करना चाहता। मुझे अनुंधान के लिए वनों में जाना पड़ता है। वहाँ जो कुछ भी प्रकृति की देन स्वरूप मिलता है, उसे बटोरकर ले आता हूँ।”

“दादू! उनकी बातों पर विश्वास मत कीजिए, ये तो ऐसे ही कहते रहते हैं।”

मैंने सोचा, ‘यह तो अजीब लड़की है, जो कहता हूँ उसी को जड़ से काट देती है।’ इस प्रकार वार्त्ता करते-करते हम सब कंचन के मकान की ओर बढ़े चले जा रहे थे कि कंचन हठात् बोल उठी, “अब आप अपने शिविर को लौट जाइए।”

@digitallibrary84

“क्यों? मैंने तो सोचा था कि आप लोगों को मकान तक छोड़ आऊँ।”
“बस-बस, हम खुद ही चले जाएँगे। अस्तव्यस्त अवस्था में मकान को दिखाकर परिहास का केंद्र नहीं बनना चाहती। उसे देखते ही मेमसाहिब की याद आ जाएगी।”

विवश हो मुझे विलग होना पड़ा। उस अवस्था में मैंने कहा, “कल आप लोगों के यहाँ जो मेरा न्योता है, वह मेरे नामकरण के लिए है। कल से नवीन माधव नाम का डॉक्टर सेन गुप्त अंश छूट जाएगा।”
“तब तो नामवर्तन कहिए, नामकरण क्यों कहते हैं?”
“जैसा आप समझें।”

इसके उपरांत मैं अपने शिविर में लौट आया। उस दिन अनुंधान के लिए साथ लाए पदार्थों की मैं परख नहीं कर सका। मेरा मस्तिष्क कंचन के विषय में ही सोचता रहा।

अगले दिन तनिका के तट पर कंचन के साथ हमारी पिकनिक हुई। डॉक्टर साहब बालकों के समान मुझसे पूछ बैठे, “नवीन, क्या तुम विवाहित हो?” मैंने उस भावार्थ प्रश्न का तुंत ही उत्तर देते हुए कहा, “अभी तो अविवाहित हूँ।” कंचन को किसी बात से छुटकारा नहीं? वह बोली, “दादू! अभी तक शब्द तो कन्या पक्ष वालों को सांत्वना देने मात्र के लिए है। उनका कोई यथार्थ अर्थ नहीं।”
“यथार्थ अर्थ नहीं, यह कैसे निश्चय कर लिया?”
“यह गणित की एक उलझन है, फिर उच्च गणित कहने से जो वस्तु समझी जाती है, वह यह नहीं है। यह तो पहले से ही सुनने में आया है कि आप छत्तीस साल के बच्चे हैं। इस अरसे में आपसे पाँच-सात बार कहा जा चुका है कि बेटा, बहू लाना चाहती हूँ। लेकिन आपने कहा, इससे पहले मैं लोहे के संदूक में रुपए लाना चाहता हूँ।” इसके बाद इस अरसे में आपका सबकुछ हो गया केवल फाँसी भर शेष थी। अंत में प्रंतीय सरकार का बड़ा पद जुट गया तो माँ ने फिर कहा, ‘अब तो बेटा ब्याह करना होगा। मेरी जिंदगी के और कितने दिन बाकी हैं?’ आपने कहा, ‘मेरा जीवन और मेरा विज्ञान एक है, उसे मैं देश के लिए उत्सर्ग करूँगा। मैं अभी ब्याह न करूँगा।’ विवश होकर फिर उन्होंने आँखों का पानी पोंछकर चुप्पी साध ली। आपके छत्तीस वर्ष का हिसाब लगाते समय मैंने कहीं गलती की हो तो कहिए, बताइए, संकोच की कोई आवश्यकता नहीं।”

फिर बोली, “हम लोगों के देश में आप लोग लड़कियों को जीवनसंगिनी के रूप में पाते हैं। विश्व का जिससे कोई प्रयोजन नहीं, किंतु विदेश में जो लोग विज्ञान के तपस्वी हैं, उनको तो उपयुक्त तपस्विनी ही मिल जाती है, जैसे-

अध्यापक क्यूरी को सहधर्मिनी मादाम क्यूरी! तो क्या वैसी आपको वहाँ रहते नहीं मिली?"

कंचन के कहते ही कैथेरिन की बात याद आ गई। लंदन में रहते समय साथ ही काम किया था। यहाँ तक कि मेरी एक रिसर्च की पुस्तक में मेरे नाम के साथ उसका नाम भी जड़ित था। बात माननी पड़ी।

कंचन ने तत्काल ही पूछा, "उनके साथ आपने विवाह क्यों नहीं किया? वे क्या इसके लिए तैयार नहीं थीं?"

"उन्हीं की ओर से प्रस्ताव तो उठा था।"

"तब?"

"मेरा नाम भारतवर्ष का ठहरा, इसलिए...।"

"यानी स्नेह की सफलता आप जैसे साधकों की कामना की वस्तु नहीं। लड़कियों के जीवन का परमलक्ष्य व्यक्तिगत है, और आप जैसे इनसानों का नैर्यक्तिक।"

इसका उत्तर मुझसे देते न बन पड़ा। मुझे चुप देखकर कंचन पुनः बोली, "बँगला साहित्य कतिपय आपने नहीं पढ़ा। उसमें यही बात दिखाई गई है कि लड़कियों का व्रत पुरुष को बाँधना है और पुरुष का व्रत है उस बंधन को काटकर ऊपर लोक का मार्ग पकड़ना। कच भी देवयानी के अनुरोध की उपेक्षा कर निकल पड़ा था। आप माँ का अनुनय न मानकर चल पड़े हैं। एक ही बात हुई, नारी और पुरुष में चिरकाल से चला आने वाला संबंध हो, चाहे भले ही अबला व्रंक्तदन होता रहे। उस व्रंक्तदन से आप लोग अपनी पूजा का नैवेद्य सजा लीजिए। देवता के उद्देश्य से ही नैवेद्य भी भेंट होती है, लेकिन देवता निरासक्त ही रहते हैं।"

कंचन ने फिर कहा, "देवयानी ने कच को क्या शाप दिया था, जानते हैं, नवीन बाबू?"

"नहीं।"

"अपने ज्ञान-साधन का फल आप स्वयं न सोच सकेंगे । हाँ, दूसरों को दान कर सकेंगे। मुझे यह बात कुछ अजीब सी लगती है। यदि यह शाप आज कोई विदेशी लोगों को देता तो वह बच जाता। विश्व की सामग्री को अपनी सामग्री के समान व्यवहार करने की वजह से ही यूरोप वाले लालच के द्वार पर मरते हैं।"

उस दिन जो बातें हुईं, वे केवल हास्य-व्यंग्य ही नहीं थीं। उनमें युद्ध की ओर संकेत था। कंचन के साथ अब मेरा संबंध सहज हो आया था, इस पर भी मैं कंचन के सम्मुख खड़े होकर उसकी चरम अभिलाषा की थाह पाने का कोई उपाय खोज नहीं पाया।

हाँ, एक दिन अवश्य पिकनिक के समय यह सुयोग मिल गया। उस समय डॉक्टर साहब शिवालय के खँडहर की सीढ़ी पर बैठकर रसायन-शास्त्र की कोई नई आई हुई पोथी पढ़ रहे थे। आबनूस के पेड़ की एक झाड़ी में बैठकर कंचन अचानक कह उठी, "इस महाकाल के वन में एक अंधी प्राणशक्ति है, उससे भयग्रस्त हूँ।"

कंचन कहती गई, "पुराने भवनों की दरार से लुक-छिपकर पीपल का अंकुर निकलता है, और फिर धीरे-धीरे अपनी जड़ों से उसे बुरी तरह जकड़ लेता है, यह भी वैसा ही है। दादू के साथ यही बात हो रही थी। दादू कह रहे थे, बस्ती से बहुत दिनों तक दूर रहने से प्रकृति के अभाव से मानव का चरित्र दुर्बल हो जाता है और आदमी की प्राणी-प्रकृति का असर प्रखर हो उठता है।"

मैंने उत्तर दिया, "बताता हूँ। मेरी बात को भली-भाँति सोच देखिएगा। मेरा विचार यह है कि ऐसे अवसरों पर मानव का संग भीतर और बाहर से मिलना चाहिए, जिसका प्रभाव मानव-प्रकृति को पूर्ण कर सके। जब तक यह नहीं होगा तब तक अंध-शक्ति से पराजित ही होना पड़ेगा। काश, आप मामूली...।"

"हाँ, हाँ कहिए, संकोच मत कीजिए।" कंचन ने शीघ्रता से कहा।

"यह तो जानते ही हैं कि मैं वैज्ञानिक हूँ अतः जो कहने जा रहा हूँ, उसे व्यक्तिगत आसक्ति से रहित होकर ही कहूँगा। आपने एक दिन भवतोष को बहुत स्नेह से देखा था, क्या आज भी उसे उसी प्रकार...।"

"समझ लीजिए, नहीं करती...तब?"

"मैंने ही आपके मन को अधर से हटाया है।"

"संभव हो सकता है; लेकिन आपने ही नहीं, बल्कि इस अंध-शक्ति ने भी। इसलिए मैं इस हटने को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखती।"

"ऐसा क्यों?"

"दीर्घकाल के प्रयास से मानव चित्र-शक्ति में अपने आदर्श की रचना करता है, प्राण-शक्ति की अंधता उस आदर्श को तोड़ देती है। आपके प्रति जो मेरा प्रेम है, वह उसी अंध-शक्ति के आक्रमण का फल है।"

"नारी होकर भी आप प्रेम पर ऐसा अपवाद मढ़ती हैं।"

"नारी होने के कारण ही ऐसा कह रही हूँ। प्रेम का आदर्श हमारे लिए पूजा की सामग्री है। उसी को सतीत्व कहते हैं। सतीत्व एक आदर्श है। यह सामग्री वन की प्रकृति की नहीं है, मानवी की है। इस निर्जन में इतने दिनों से इसी आदर्श की पूजा कर रही थी। सारे आघातों को सहन करने और धोखा खाने के बाद भी उसे बचा सकी तो मेरी पवित्रता भी नहीं जाएगी।"

"क्या भवतोष के लिए अब भी श्रद्धा का स्थान है?"

"नहीं।"

“उसके पास जाना चाहती हो।”
“नहीं।”
“तो फिर? मैं आशय नहीं समझा।”
“आप समझ भी नहीं सकेंगे। आपकी संपत्ति ज्ञान है, उच्चतर शिखर पर वह भी इंपर्सनल है। नारी संपत्ति हृदय की संपत्ति है। यदि उसका सब कुछ चला जाए, वह सबकुछ जो बाहरी है, जिसे स्पर्श किया जा सकता है, तब भी उस प्रेम में वह वस्तु बच रहती है, जो कि इंपर्सनल है।”
“वाद-विवाद में समय नष्ट न कीजिए। मुझे कुछ ही दिनों में खोज करने के अभिप्राय से अन्यत्र कहीं चला जाना होगा किंतु...।”
“फिर गए क्यों नहीं?”
“आपसे...।”
तभी कंचन ने पुकारा, “दादू!”
डॉक्टर साहब अपना पढ़ना-लिखना छोड़कर उठ आए और मधुर स्नेह के स्वर में बोले, “क्या है दीदी?”
“आपने उस दिन कहा था कि मनुष्य का सत्य उसी की तपस्या के भीतर से अभिव्यक्त हुआ है। उसकी अभिव्यक्ति प्राणी शास्त्र से समझी जाने वाली अभिव्यक्ति नहीं है?”
“हाँ, बिलकुल ठीक।”
“दादू, तो फिर आज अपनी और आपकी बात का निर्णय कर दूँ। कई दिनों से मस्तिष्क उथल-पुथल का केंद्र बना हुआ है।”
मैं उठ खड़ा हुआ, बोला, “तो मैं चलूँ?”
“नहीं! आप बैठिए। दादू, आपका वही पद फिर खाली हुआ है और सेक्रेटरी ने पुनः आपको बुलवाया भी है।”
“हाँ तो फिर...?”
“आपको उस पद को स्वीकार करना होगा, अति शीघ्र वहीं लौट जाना होगा।”
डॉक्टर साहब बेचारे हत्बुद्धि होकर कंचन के मुँह की ओर ताकते रहे। कंचन बोली, “अच्छा, अब समझी, आप इसी सोच में पड़े हैं कि मेरी क्या गति होगी? यदि अहंकार की मात्रा बहुत न बढ़ती हो तो आपको यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि मेरे बिना आपका एक दिन भी नहीं चल सकता। मेरी अनुपस्थिति में तो पंद्रहवीं आश्विन अक्तूबर समझ बैठते हो। जिस दिन घर में अपने सहयोगी अध्यापक को भोजन के लिए आमंत्रित करते हो, उसी दिन लाइब्रेरी का द्वार बंद करके कोई ‘निदारुण इक्वेशन’ सुलझाने में लग जाते हो। नवीन बाबू सोचते होंगे कि मैं बात बढ़ा-चढ़ाकर कह रही हूँ।”
“आज ऐसी अशुभ बातें...।”

@digitallibrary84

“सब अभी खत्म हो जाएँगी। आप चलें तो मेरे साथ अपने काम पर, छूटी हुई गाड़ी फिर लौट आएगी।”

डॉक्टर साहब मेरी ओर देखकर बोले, “तुम्हारी क्या सलाह है, नवीन?”

मैं क्षण भर स्तब्ध रहकर बोला, “कंचन देवी से अधिक अच्छा परामर्श कोई नहीं दे सकता।”

कंचन ने उठकर मेरे चरण छूकर प्रणाम किया। मैं संकुचित होकर पीछे हट आया। कंचन बोली, “संकोच न कीजिए। आपकी तुलना में मैं कुछ भी नहीं हूँ, यह बात किसी दिन साफ हो जाएगी। आज आपसे यहीं अंतिम विदा लेती हूँ, जाने से पूर्व अब भेंट न होगी।”

“यह कैसी बात कह रही हो, दीदी?” डॉक्टर साहब ने पूछा।

“दादू!” इतना ही कह सकी कंचन।

मैंने उसी क्षण डॉक्टर साहब की पग-धूलि का स्पर्श किया। उन्होंने छाती से लगाकर कहा, “मैं जानता हूँ नवीन कि तुम्हारी कीर्ति का पथ तुम्हारे सामने प्रशस्त है।”

अपने स्थान पर लौटकर पहला रिकॉर्ड निकाला। उसे देखते ही मन में सहसा आनंद उमड़ आया। समझा, मुक्ति इसी को कहते हैं। संध्यावेला में दिन भर का काम समाप्त करके बरामदे में आते ही अनुभव हुआ, पंछी पिंजरे से तो निकल आया है, किंतु उसके पाँवों में जंजीर की एक कड़ी अब भी उलझी हुई है, हिलते-हिलते वह बज उठती है।

❑

@digitallibrary84

धन की भेंट

गुस्से में भरकर वृंदावन कुंडू अपने पिता के समीप आकर कहने लगा, "मैं इसी वक्त आपसे विदा होना चाहता हूँ।"

उसके पिता जगन्नाथ कुंडू ने क्रोध तथा नफरत से देखते हुए कहा, "अभागे! कृतघ्न! मैंने जितना भी रुपया तेरे पालन-पोषण पर खर्च किया है, उसे चुकाकर ही ऐसी धमकी देना।"

जिस तरह का खान-पान जगन्नाथ के घर चला करता था, ऐसे खाने पर कुछ ज्यादा धन खर्च न होता था। भारत के प्राचीन ऋषि मितव्ययिता के लिए ऐसी ही चीजें का प्रंध कर लिया करते थे। जगन्नाथ के बरताव से मालूम होता था कि वह इस विषय में अपनी औलाद को उन ऋषियों के आदर्शों पर ही चलाना पसंद करता था। यद्यपि वह पूर्णरूप से इस आदर्श को निभाने में असमर्थ था। इसकी वजह कुछ यह समझी जा सकती है कि जिस संसार में उसका रहन-सहन था, उसमें अपने पुराने आदर्श को शरीर के साथ मिलाए रखने के विषय में प्रकृति की उत्तेजना तीव्र तथा युक्ति-संगत थी।

जब तक वृंदावन अविवाहित था, उनका निर्वाह जैसे-तैसे चलता रहा, लेकिन विवाह के बाद उसने हद से बाहर इस उत्तम और सुंदर आदर्श को, जो उसके महामना पिता ने बनाकर रखा था, छोड़ना आरंभ कर दिया। ऐसा मालूम होता था कि सांसारिक सुख-ऐश्वर्य के संबंध में उसके खयाल आध्यात्मिक से शारीरिक की ओर बदल रहे हैं और खाने-पीने की न्यूनता से उसे भूख-प्यास, सर्दी-गरमी आदि जो परेशानियाँ भी सामने आती रहीं, उसने उन्हें सहना पसंद न करके दुनिया के साधारण व्यक्तियों के आचरण का अनुकरण करना शुरू कर दिया।

जब से वृंदावन ने अपने पिता के निर्मित उच्च आदर्श का बलिदान किया, तभी से पिता तथा पुत्र में झगड़ा आरंभ हो गया। इस कलह ने चरम सीमा का रूप उस समय धारण किया, जब वृंदावन की पत्नी ज्यादा बीमार हुई और उसकी चिकित्सा के लिए एक कविराज बुलाया गया। यहाँ तक का व्यवहार भी माफ करने के योग्य था, किंतु जब वैद्यराज ने रोगी के लिए अधिक रुपयों की दवाई का निर्णय किया, तो जगन्नाथ ने समझ लिया कि वैद्यराज अयोग्य है और वैद्यक के नियमों से अनजान। बस उसने उसी वक्त उनको घर से बाहर निकलवा दिया। वृंदावन ने पहले तो पिता से काफी अनुनय-विनय की, फिर झगड़ा भी किया, लेकिन पिता के कान पर जूँ तक न रेंगी। अंत में जब पत्नी स्वर्ग सिधार

गई तो वृंदावन का क्रोध अधिक बढ़ गया तथा उसने अपने पिता को उसका प्राण-घातक ठहराया।

जगन्नाथ ने स्वभावानुसार उसको समझाने की बहुत कोशिश की और कहा, "तुम कैसी नासमझी की बातें करते हो? क्या लोग विभिन्न तरह की औषधि खाकर नहीं मरते, अगर मूल्यवान औषधियाँ ही मनुष्य को जीवित रख सकतीं तो बड़े-बड़े राजा-महाराजा क्यों मरते? इससे पहले तुम्हारी माँ तथा दादी मर चुकी हैं, बहू मर गई तो क्या हुआ? समय आने पर हर एक को इस दुनिया से जाना पड़ता है।"

वृंदावन अगर इस इस तरह दुखी और सचेत होकर वास्तविक परिणाम पर पहुँचने में योग्य न होता तो संभव था कि वह इन बातों सें कुछ सांत्वना हासिल कर लेता। इससे पहले मरने के वक्त उसकी माँ और दादी ने दवाई पी थी तथा औषधि सेवन न करने का यह रिवाज बहुत पहले से इस खानदान में चला आया है। नई पौध का चरित्र इतना बिगड़ चुका है कि वह पुराने तरीके पर मरना भी पसंद नहीं करती।

जिस युग की चर्चा हम कर रहे हैं, उन दिनों अंग्रेज भारत में नए-नए आए थे, मगर उस वक्त भी इस देश के बड़े-बूढ़े अपनी-अपनी औलाद की आदत की खिलाफतपन के ढंग पर आश्चर्य तथा विकलता प्रकट किया करते और आखिर में जब उनकी एक न चलती तो अपने मुँह में लगे हुए हुक्कों से सांत्वना हासिल करने की कोशिश करते।

वास्तविकता यह है कि जिस वक्त मामला चरमसीमा को पहुँच गया तो वृंदावन से न रहा गया तथा उसने आवेश और विकलता के साथ अपने पिता से कहा, "मैं जाता हूं।"

पिता ने उसे दृढ़ देखकर उसी वक्त आज्ञा दे दी।

उन्होंने घोषणा करते समय कह दिया, "चाहे देवता मेरे तरीके को गौ-हत्या के समान क्यों न समझें, मैं सौगंध खाकर कहता हूँ कि तुम्हें अपनी धन-दौलत में से एक कौड़ी भी नहीं दूँगा।"

"अगर मैं तुम्हारी एक पाई तक को भी हाथ लगाऊँ तो उस आदमी से भी नीचे होऊँगा जो अपनी माँ को बुरे भाव से देखता है।" कहते हुए वह आगे निकल गया।

गाँव के निवासियों ने अपने जैसे विचारों के लंबे-चौड़े वाद-विवाद के बाद उस छोटे से परिवर्तन भरे झगड़े को संतोषपूर्वक देखा। जगन्नाथ ने चूँकि अपने बेटे को अपनी संपत्ति से वंचित कर दिया था, अतः प्रत्येक आदमी उसे सांत्वना देने का प्रयास कर रहा था। वे सब इस विषय में सहमत थे कि सिर्फ पत्नी की खातिर पिता के साथ झगड़ा करने का दृश्य इस नए युग में ही देखा जा सकता

है। इसके संबंध में वे खुद जो कारण बताते थे, वे भी बहुत असंगत थे। उनका कहना था कि अगर किसी की पत्नी मर जाए तो बड़ी सरलता से दूसरी हासिल कर सकता है, पिता मर जाए तो विश्व भर की धन-दौलत के बदले में भी उसे हासिल नहीं किया जा सकता।

इस बात में संदेह नहीं कि उनका उपदेश हर तरह से ठीक था, किंतु हमें संदेह है कि दूसरा पिता हासिल करने की पीड़ा उस पथभष्ट बेटे को कहाँ तक प्रभावित कर सकती थी। इसके खिलाफ हमारा विचार यह है कि ऐसा मौका आता तो वह उसे ईश्वरीय अनुंपा में सम्मिलित समझता।

वृंदावन के अलग होने का दुख उसके पिता जगन्नाथ को जरा भी महसूस न हुआ था। इसके कुछ विशेष कारण थे। एक तो यह कि उसके जाने से घर का खर्च कम हो गया। दूसरे, मन से एक भारी फिक्र दूर हो गई। हर समय उसे इस बात का भय रहता था कि मेरा बेटा मुझे जहर देकर न मार दे। जब कभी वह अपना थोड़ा सा भोजन करने बैठता तो यही विचार उसे परेशान कर देता कि इसमें जहर न मिला हे? यही चिंता किसी हद तक वृंदावन की पत्नी का स्वर्गवास हो जाने पर दूर हो गई थी, मगर अब वह बिलकुल ही न रही।

जिस तरह घने अँधियारे बादलें में चमकीली बिजली तथा भयंकर तूफानी समुद्र में बहुमूल्य रत्न विद्यमान रहते हैं, उसी तरह बूढ़े जगन्नाथ के कठोर हृदय में भी एक कमजोरी बाकी थी। वृंदावन जाते वक्त अपने साथ चार वर्षीय पुत्र गोकुलचंद को भी ले गया था, चूँकि उसकी खुराक तथा वत्रों का खर्च बहुत कम था, इसलिए जगन्नाथ को उससे बहुत प्यार था। जाते वक्त जब वृंदावन उसे अपने साथ ले गया तो सबसे पहले दुख तथा पछतावे की अपेक्षा उसने दिल में हिसाब लगाना शुरु किया कि इन दोनों के चले जाने से खर्च में कितनी कमी हो जाएगी। इस बचत की सालाना रकम कहाँ तक पहुँचेगी और इस बचत को अगर किसी रकम का सूद समझा जाए तो उसका मूलधन कितना हो सकेगा?

जब तक गोकुलचंद घर में था, वह अपनी चंचलता से जगन्नाथ का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित रखता था, लेकिन उसके चले जाने पर कुछ दिनों में ही बूढ़े को ऐसा अनुभव होने लगा कि घर काटने को दौड़ता है। इससे पहले जिस वक्त जगन्नाथ पूजा-पाठ में तल्लीन होता तो गोकुलचंद उसे छेड़ा करता। भोजन करते वक्त उसके आगे से रोटी या चावल उठाकर भाग जाता और खुद खा लेता तथा जब वह आय-व्यय लिखने बैठता तो उसकी दवात लेकर दौड़ जाता, मगर अब उसके चले जाने पर ये सब बातें भी दूर हो गईं। जिंदगी का रोजाना का क्रियाकर्म उसे भार अनुभव होने लगा। उसे ऐसा मालूम होता था कि इस तरह का विश्राम भविष्य के संसार में ही सहन किया जा सकता है। जब कभी वह गोकुल की चंचलता को याद करता तो रजाइयों में उसके हाथ में छेदों या

दरी पर कलम-दवात से उसके बनाए हुए भद्दे चित्रों को देखता तो उसका मन मारे कष्ट के व्याकुल हो जाता। जगन्नाथ को अपने सोने के कमरे में एक कोने के भीतर पड़ी हुई पुरानी धोती के टुकड़े दिखाई पड़े, तो एकदम उसके नेत्रों से आँसू बह निकले। यह वह धोती थी, जिसे गोकुल ने दो साल के थोड़े वक्त में फाड़ दिया था तो जगन्नाथ ने उसे झिड़का और बुरा-भला कहा था। मगर अब उसने शपथ खा ली कि अगर गोकुल उसके जीते जी फिर कभी वापस आ गया तो चाहे वह हर वर्ष एक धोती फाड़े, वह उससे कभी नाराज न होगा।

लेकिन गोकुल को न वापस आना था, न आया। गरीब जगन्नाथ दिन-प्रतिदिन बूढ़ा होता जा रहा था और उसको खाली घर अधिक-से-अधिक डरावना लगने लगा था।

अंत में दशा यहाँ तक पहुँची कि वह संतोष से घर में बैठ भी न पाता। मध्याह्न के वक्त जब गाँव के सब लोग अपने-अपने घरों में सोए होते तो जगन्नाथ नारियल हाथ में लिये गलियें में घूमता दिखाई देता। गाँव के लड़के जब कभी उसे अपनी तरफ आता देखते तो खेल छोड़कर दूर जा खड़े होते और इस तरह पद्य-पंक्ति गाने लगते, जिसमें एक स्थानीय कवि ने वृद्ध जगन्नाथ की मितव्ययी आदत की प्रशंसा की थी। कोई आदमी उसका वास्तविक नाम इस भय से जबान पर न लाता कि कहीं उस रोज अन्न-जल हासिल न हो। अतः लोगों ने उसके अनेक प्रकार के नाम रख रखे थे। वृद्ध उसे जगन्नाथ कहा करते थे, लेकिन मालूम नहीं छोटे लड़के उसे चिड़ियल क्यों कहते थे। संभव है, इसका कारण यह हो सकता है कि उसकी त्वचा शुष्क तथा शरीर रक्तहीन दिखाई देता था। उन्हीं वजहें से वह प्रेत आत्माओं के जैसा समझा जाने लगा।

एक दिन दोपहर बाद जगन्नाथ स्वभावानुसार गाँव की गलियों में आम के छतनारे पेड़ों के नीचे अपना नारियल हाथ में लिए घूम रहा था। उसने देखा कि लड़का जो देखने में अजनबी मालूम होता था, गाँव के लड़कों का सरदार बना हुआ है तथा उन्हें कोई नई शरारत समझा रहा है। उसके महान् चरित्र तथा उसकी कुशाग्र बुद्धि से प्रभावित होकर सब लड़कों ने इस बात का निर्णय कर लिया था कि प्रत्येक कार्य में उसकी आज्ञानुसार आचरण करेंगे। दूसरे लड़कों की भाँति वह बूढ़े जगन्नाथ को अपनी तरफ आता देखकर डर से भागा नहीं, बल्कि उसके समीप जाकर चादर झाड़ने लगा। उसी वक्त चादर में से एक जीवित छिपकली निकलकर बूढ़े के शरीर पर गिरी और उसकी पीठ की ओर से नीचे उतरकर वन की तरफ भाग गई। डर से वृद्ध के हाथ-पाँव काँपने लगे। यह देखकर बच्चे प्रसन्नता से उच्च स्वर में बेहूदा नारे लगाने लगे। वृद्ध जगन्नाथ बड़बड़ाता और गालियाँ देता हुआ बहुत दूर निकल गया, किंतु वह अँगोछा जो प्रायः उसके

कंधों पर पड़ा रहता था, अचानक गायब हो गया तथा दूसरे ही क्षण वह उस अपरिचित लड़के के सिर पर बँधी हुई पगड़ी के रूप में दिखाई देने लगा।

लड़के की तरफ से इस तरह की चेष्टा देखकर जगन्नाथ पहले तो कुछ चिंतित हुआ, फिर वह गाँव की रोजाना की कठोरता को इस तरह पराजित होते देखकर प्रसन्न भी हुआ। काफी दिनों से लड़के उसकी छाया ही देखकर दूर भाग जाया करते थे तथा उसे उनसे बोलने व बातचीत करने का अवसर भी न मिलता था। अपरिचित लड़का इस शरारत के बाद दूर भाग गया था, किंतु बहुत से वचन और सांत्वना देने के बाद वह उस वृद्ध के नजदीक आया। फिर दोनों में निम्न बातें होने लगीं-

"बेटा, तुम्हारा क्या नाम है?"

"मेरा नाम नितईपाल है।"

"तुम्हारा घर कहाँ है?"

"मैं नहीं बताऊँगा अपना घर।"

"तुम क्यों नहीं बतलाओगे?"

"क्योंकि मैं घर से भागकर यहाँ आया हूँ।"

"घर से भागे क्यों थे?"

"मेरा पिता मुझे स्कूल जाने को कहता था इसलिए।"

जगन्नाथ के मन में विचार आया, ऐसे होनहार लड़के को स्कूल भेजना कैसी व्यर्थ की बात है? वह कैसा लड़के के भविष्य के परिणाम की तरफ आँखें बंद रखने वाला पिता होगा, जो इसे स्कूल भेजना चाहता है।

थोड़ी ही देर बाद वह कहने लगा, "अच्छा, क्या तुम मेरे घर रहना पसंद करोगे?"

लड़के ने जवाब दिया, "क्यों नहीं।"

उसी दिन से वह लड़का उसके घर रहने लगा। उसे घर में प्रवेश करते हुए इतना भी डर न हुआ, जितना अँधेरे में किसी पेड़ के नीचे जाने से हो सकता है। इतना नहीं, बल्कि उसने अपने कपड़े और भोजन के विषय में ऐसे निर्भयतापूर्ण ढंग से प्रश्न करने शुरू किए जैसे वह उस घर में वर्षों से आ रहा हो। यदि कोई वस्तु उसकी मनपसंद न होती तो वह जगन्नाथ से झगड़ा आरंभ कर देता। जगन्नाथ अपने बेटे को तो डरा-धमका भी लेता, लेकिन उसे बस में लाना आसान न था। उसे उसकी हर एक बात माननी पड़ती।

गाँव के लोग आश्चर्य में थे कि जगन्नाथ ने नितईपाल को क्यों इस तरह सिर चढ़ा रखा है। यह सर्वविदित था कि वृद्ध कुछ सप्ताह का मेहमान है। वे इस बात को सोचकर बहुत चिंतित होते थे कि उसके स्वर्ग सिधारने पर उसकी संपत्ति का अधिकारी यही लड़का होगा। वे सब इस बात पर लड़के को भड़काने की

@digitallibrary84

कोशिश कर सकते थे, लेकिन जगन्नाथ उसकी ऐसी निगरानी रखता था जैसे वह उसकी रीढ़ की हड्डी हो।

कभी-कभी लड़का धमकी देकर कहता, "मैं अपने घर चला जाऊँगा।" ऐसे मौके पर लोभ-लालच का जाल बिछाकर कहता, "मैं अपनी सारी दौलत तुमको ही दे दूँगा।" लड़का हर तरह से कम आयु का था, तब भी इस वचन के महत्त्व को बखूबी समझता था।

गाँव वालों से और कुछ न हो सका तो उन्होंने उस लड़के के बाप के संबंध में जाँच शुरू की। उनको यह सोचकर बहुत दुख होता था कि उसके माता-पिता उसकी याद में दुखी होंगे। लड़का बड़ा ही चंचल है, जो उन्हें इस तरह छोड़कर भाग आया। वे इसे हजार-हजार गालियाँ देते होंगे। लेकिन ये सब बातें वे जिस आवेश में करते थे, इससे साफ पता लगता था कि वे न्याय नहीं, ईर्ष्या से काम ले रहे हैं।

वृद्ध को एक दिन किसी बटोही की जबानी ज्ञात हुआ कि दामोदर पाल अपने बेटे की खोज में पास के गाँवों तथा कस्बों में फिर रहा है, और कुछ ही वक्त में वह इस गाँव में आने वाला है। नितई ने जब यह बात सुनी तो सहज भाव से उसके मन के प्रेम में आवेश आया। वह उद्विग्नता की स्थिति में धन-दौलत छोड़कर अपने पिता के पास जाने को तैयार हो गया। जगन्नाथ उसे रोकने के लिए हर एक संभव ढंग से कोशिश करता था। अतः उसने कहा, "तुम अपने पिता के पास जाओगे तो वह तुम्हें पीटेगा, मैं तुम्हें एक ऐसे स्थान पर छिपा दूँगा कि किसी को भी तुम्हारा पता न मिल सकेगा, यहाँ तक कि गाँव वाले भी पता न कर सकेंगे।"

इस बात से लड़के के मन में आश्चर्य उत्पन्न हुआ तथा कहने लगा, "बाबा! मुझे कहाँ छिपाओगे? भला वह जगह तो तुम भी दिखा दो।"

जगन्नाथ ने जवाब दिया, "यदि वह स्थान मैं इस समय दिखा दूँ तो लोगों को खबर हो जाएगी, रात हो जाने दो।" सभी बच्चों में आश्चर्यजनक जगह की उत्कट लालसा होती है, नितई भी उसी प्रकार यह बात सुनकर खुश हुआ। उसने अपने हृदय में विचारा कि जब मेरे पिता मेरी खोज करने के बाद वापस चले जाएँगे तो मैं दौड़ लगाकर लड़कों के साथ उस जगह पर आँखमिचौली खेला करूँगा तथा कोई मालूम न कर सकेगा कि मैं कहाँ छिपा हूँ, वास्तव में उस वक्त बड़ा आनंद आएगा। पिताजी पूरा गाँव छान मारेंगे तथा मुझे कहीं न पा सकेंगे, बड़ी दिल्लगी होगी।

दोपहर बाद के वक्त जगन्नाथ लड़के को कुछ समय के लिए घर में बंद करके कहीं चला गया। उसके वापस आने पर नितई ने उससे सवाल किए तो वह परेशान हो गया।

अंत में जब रात हुई तो नितई कहने लगा, “बाबा, अब तो वह जगह मुझे दिखा दो।”

जगन्नाथ ने जवाब दिया, “अभी रात नहीं हुई।”

इसके कुछ वक्त बाद लड़के ने फिर कहा, “बाबा, अब रात बहुत हो गई है, अब तो चलो।”

जगन्नाथ ने धीरे से कहा, “अभी गाँव के मानव सोए नहीं हैं।”

फिर नितई एक क्षण के लिए रुका और बोला, “बाबा, इस समय तो सब लोग सो गए, आओ अब चलें।”

रात बहुत बीत चुकी थी। गरीब लड़का इतनी देर तक कभी न जागा था, इसलिए उसको जागे रहने में बड़ी कठिनाई पड़ रही थी। अंत में आधी रात के वक्त जगन्नाथ लड़के की बाँह पकड़कर खाली गाँव की अँधेरी गलियों से रास्ता टटोलता बाहर निकला। सब दिशाएँ सूनी थीं, चारों ओर सूनापन था, कभी-कभी कोई कुत्ता भौंकने लगता और कुत्ते भी उसके साथ मिलकर भौंकना शुरू कर देते। इसके अलावा कहीं-कहीं उसके पैरों की आहट से कोई पक्षी वृक्ष की टहनी से पंख फड़फड़ाता हुआ उड़ जाता। नितई डर से काँप रहा था, लेकिन जगन्नाथ ने उसका हाथ मजबूती से पकड़ा हुआ था।

कई खेतें से होकर आखिर में ये लोग जंगल में घुस गए। यहाँ एक पुराना मंदिर खड़ा हुआ था, जिसमें कभी भी देवता की मूर्ति दिखाई न पड़ती थी।

नितई ने उसे देखकर निराशा भरे स्वर कहा, “बस, यही स्थान था?”

यह स्थान उसकी सभी कल्पनाओं से भिन्न था, क्योंकि उसमें कोई आश्चर्य की बात न थी। जब से वह घर से भागा था, अनेक बार ऐसे खँडहर मंदिरों में रातें बिता चुका था। इतना होने पर भी आँखमिचौली खेलने के लिए यह जगह सुंदर थी, अर्थात् ऐसी कि उसके साथ खेलने वाले लड़के यहाँ उसकी खोज न कर सकते थे।

जगन्नाथ ने फर्श के मध्य से एक पत्थर की शिला उठाई। उसके नीचे आश्चर्यचकित लड़के को एक तहखाना दिखा, जिसमें एक धीमा सा दीप जल रहा था। डर और आश्चर्य, ये दोनों बातें उसके मन पर जमी हुई थीं। अंदर एक बाँस की सीढ़ी खड़ी थी, जगन्नाथ नीचे उतरा तथा नितई भी उसके पीछे-पीछे हो लिया।

नीचे उतरकर लड़के ने इधर-उधर देखा तो उसे चारों तरफ पीतल के टोकरे पड़े हुए दिखाई दिए। उसके बीच में एक आसन बिछा हुआ था तथा सामने थोड़ा सिंदूर, घिसा हुआ चंदन, कुछ जंगली फूल तथा पूजा की बची सामग्री रखी हुई थी। लड़के ने अपनी जिज्ञासापूर्ति के लिए उन टोकरों में से कुछ के अंदर हाथ डाला और जब हाथ बाहर निकालकर देखा तो मालूम हुआ कि उनमें रुपए तथा

सोने की मोहरें भरी हुई हैं। इतने में वृद्ध जगन्नाथ ने कहा, "नितई, मैंने तुमसे कहा था न कि मैं अपनी सारी दौलत तुम्हें दे दूँगा, मेरे पास कोई ज्यादा धन नहीं है, किंतु जो कुछ भी है, वह इन पीतल के टोकरों में भरा है तथा यह सब मैं आज तुम्हारे हवाले करना चाहता हूँ।"

नितई प्रसन्नता की अधिकता के मारे उछल पड़ा और बोला, "सच! क्या तुम इसमें से एक रुपया भी अपने पास न रखोगे?"

वृद्ध ने जवाब दिया, "अगर मैं इसमें से कुछ लूँ तो ईश्वर करे, मेरा वह हाथ कोढ़ी हो जाए, लेकिन यह धन मैं तुम्हें एक शर्त पर देता हूँ। यदि कभी मेरा पोता गोकुलचंद या उसका भी पोता या परपोता या उसकी संतान में कोई भी इस रास्ते से होकर जाए तो तुम्हारे लिए जरूरी होगा कि यह सारी संपत्ति उसको सौंप दो।"

लड़के ने थोड़ा ध्यान से सोचा और पक्के इरादे के साथ सोचा कि बूढ़ा पागल हो गया है। फिर वृद्ध कहने लगा, "बस, तो इस जगह पर बैठ जाओ।"

"मगर क्यों?"

"तुम्हारी पूजा की जाएगी, इसलिए।"

लड़के ने हैरत से पूछा, "यही रीति है क्या?"

वृद्ध ने जवाब दिया, "हाँ, यही रीति है।"

लड़का उछलकर फौरन आसन पर बैठ गया। वृद्ध जगन्नाथ ने उसके माथे पर चंदन लगाया, भौंहों के बीच सिंदूर की बिंदी लगा दी, जंगली फूलों का हार उसके गले में डाला तथा कुछ मंत्र उच्चारण करने लगा।

बेचारा नितई देवता की तरह आसन पर बैठा-बैठा बोर हो गया, क्योंकि उसकी पलकें नींद से भारी हो रही थीं। अंत में उसने घबराकर कहा, "बाबा!"

लेकिन जगन्नाथ उत्तर दिए बिना ही मंत्रों का उच्चारण करता रहा।

आखिर में उसके मंत्रों का सिलसिला समाप्त हुआ और जगन्नाथ ने बड़ी मुश्किल से एक टोकरे को खींचकर लड़के के सम्मुख रखा तथा ये शब्द विवशता से उसके मुँह से कहलवाए, "मैं ईमानदारी से प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस सारी धन-संपत्ति को गोकुलचंद कुंडू के बेटे, पोते-परपोते अथवा उसकी संतान के किसी आदमी को, जो इसका हकीकतन और योग्य उत्तराधिकारी होगा, दे दूँगा।"

@digitallibrary84

कई बार शब्दों के कहने में भोले लड़के की चेतना जाती रही तथा कंठ सूखने लगा।

जैसे-जैसे यह रीति खत्म हुई, गुफा की हवा, दीपक का धुआँ तथा उन दोनों के साँस की वजह से बुरी मालूम होने लगी। नितई को अपना कंठ मिट्टी की तरह सूखा तथा हाथ-पैर जलते अनुभव हो रहे थे। बेचारे का दम घुटा जा रहा था।

धीरे-धीरे दीपक की रोशनी मद्धिम होती जा रही थी। यहाँ तक कि दीपक आखिरी झोंका खाकर बुझ गया। इसके बाद अँधेरा फैल गया। नितई को ऐसा लगा कि वृद्ध जल्दी-जल्दी सीढ़ी से ऊपर चढ़ रहा है। उसने घबराकर पूछा, "बाबा, तुम कहाँ जा रहे हो?"

जगन्नाथ ने लगातार ऊपर की तरफ चढ़ते हुए उत्तर दिया, "मैं अब जाता हूँ, तुम यहीं रहो, यहाँ तुम्हें कोई न ढूँढ़ सकेगा। वृंदावन के बेटे तथा जगन्नाथ के पोते गोकुलचंद का नाम याद रखना।"

इसके बाद उसने ऊपर जाकर सीढ़ी खेंच ली। लड़के ने अवरुद्ध तथा दयनीय स्वर में कहा, "मैं अब अपने पिता के पास जाना चाहता हूँ, यहाँ मुझे डर लगता है।"

जगन्नाथ ने उसकी परवाह न करते हुए गुफा के मुँह पर पत्थर की शिला रख दी। इसके बाद दोनों जंघाओं को मोड़कर झुका तथा अपने कान पत्थर के पास लगाकर सुनने लगा। अंदर से आवाज आई, "बाबाजी!" फिर किसी भारी चीज के फर्श पर गिरने की आवाज सुनाई दी तथा इसके बाद गहरी खामोशी छा गई।

बूढ़े जगन्नाथ ने इस तरह अपना धन उसको सौंपकर जल्दी-जल्दी पत्थर के ऊपर मिट्टी डालनी आरंभ कर दी। उस पर टूटी-फूटी ईंटें और चूना रख दिया तथा फिर मिट्टी बिछाकर उसमें जंगली घास तथा बूटियों की जड़ें खड़ी कर दीं।

रात संभवतः खत्म हो चुकी थी, लेकिन वह उस जगह से हटकर घर न जा सका। वह रह-रहकर अपना कान पृथ्वी पर लगाता और आवाज सुनने की कोशिश करता। ऐसा मालूम होता था कि अब भी उस गुफा के भीतर या पृथ्वी की असीम गहराइयों में से एक वेदनायुक्त व्रंक्तदन सुनाई दे रहा है। उसे ऐसा मालूम होता था कि रात में आसमान पर सिर्फ वही एक आवाज छाई हुई है और विश्व के सब आदमी उस आवाज से जागकर बिस्तरों में बैठे उसे सुनने का प्रयत्न कर रहे हैं।

पागल वृद्ध जोश में आकर ज्यादा मिट्टी डाले जा रहा था, जिससे उस आवाज को दबा दे, मगर इस पर भी रह-रहकर वह आवाज उसके कानों में आ रहे थी, "बाबाजी! हाय बाबाजी!"

उसने पूरी शक्ति से धरती पर पाँव मारकर चीखते हुए कहा, "चुप रहो, लोग तुम्हारी आवाज सुन लेंगे।"

@digital_prary84

फिर भी उसे मालूम हुआ कि 'हाय बाबाजी! हाय बापू!' की आवाजें रह-रहकर सुनाई दे रही थीं।

इतने में सूरज निकल आया तथा जगन्नाथ कुंडू मंदिर को छोड़कर खेतों की तरफ आ गया।

वहाँ भी किसी ने उसके पीछे से आवाज दी, "बापू!" घबराहट की स्थिति में जगन्नाथ ने पीछे फिरकर देखा तो उसका लड़का वृंदावन था।

वृंदावन कहने लगा, "हाँ, मुझे मालूम हुआ है कि मेरा लड़का आपके घर में छिपा हुआ है, उसे मुझे दे दो।"

यह सुनकर वृद्ध के नेत्र चौड़े हो गए, मुँह खुला का खुला रह गया, उसने मुड़कर पूछा, "क्या कहा, तुम्हारा लड़का?"

वृंदावन ने कहा, "हाँ, मेरा लड़का गोकुल, अब उसका नाम नितईपाल है और मैंने अपना नाम बदलकर दामोदर पाल प्रसिद्ध कर रखा था, क्योंकि तुम्हारी मनहूसी तथा कंजूसी की बात चारों तरफ ज्यादा फैल चुकी थी। मजबूर होकर मुझे अपना वास्तविक नाम बदलना पड़ा, वरना मुमकिन यह था कि लोग हमारा नाम लेने से भी सकुचाते।"

वृद्ध ने धीरे से अपने दोनों हाथ सिर के ऊपर उठाए, उसकी उँगलियाँ इस तरह काँपने लगीं, मानो वह हवा में किसी अदृश्य चीज को पकड़ने की कोशिश कर रही हों, फिर वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसे चेत हुआ तो वह अपने बेटे की बाँह पकड़कर उसे लगभग घसीटता हुआ पुराने मंदिर के समीप ले गया तथा पूछने लगा, "तुम्हें इसके भीतर से रोने की आवाज सुनाई देती है क्या?"

वृंदावन ने जवाब दिया, "नहीं।"

वृद्ध ने कहा, "ध्यान से सुनो, कोई आवाज अंदर से 'बाबाजी-बाबाजी' कहती सुनाई नहीं देती क्या?"

वृंदावन ने फिर कान लगाकर जवाब दिया, "नहीं।"

इससे बूढ़े जगन्नाथ की परेशानी किसी सीमा तक दूर हो गई, साथ ही उसके दिमाग ने भी उसे जवाब दे दिया।

लोग उसके पागलपन पर हँसने लगते। इसके लगभग चार साल पश्चात् जगन्नाथ मृत्यु-शैया पर पड़ा हुआ था। विश्व का प्रकाश धीरे-धीरे उसकी आँखों के सामने से दूर होता जा रहा था तथा साँस अधिक कष्ट से आने लगी थी। सहसा वह विक्षिप्त अवस्था में उठकर बैठ गया। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर को उठा लिये तथा हवा में इस तरह चलाने लगा जैसे किसी चीज को टटोल रहा हो और कहने लगा, "मेरी सीढ़ी किसने उठा ली?"

उस खतरनाक बंदीगृह में से, जहाँ न देखने को रोशनी तथा न साँस लेने के लिए वायु थी, बाहर निकलने के लिए सीढ़ी न पाकर वह फिर अपनी मृत्यु-शैया पर गिर पड़ा तथा जहाँ संसार की स्थायी आँखमिचौली के खेल में कोई छिपने वाला पाया नहीं गया, वह उस श्रेणी में खो गया।

❑

@digitallibrary84

पत्नी का पत्र

श्री चरणकमलेषु,

आज हमारे विवाह को पंद्रह वर्ष हो गए, लेकिन अभी तक मैंने कभी तुमको चिठ्ठी न लिखी। सदा तुम्हारे पास ही बनी रही। न जाने कितनी बातें कहती-सुनती रही, पर चिठ्ठी लिखने लायक दूरी कभी नहीं मिली।

आज मैं श्री क्षेत्र में तीर्थ करने आई हूँ, तुम अपने ऑफिस के काम में लगे हुए हो। कलकत्ता के साथ तुम्हारा वही संबंध है, जो घोंघे के साथ शंख का होता है। वह तुम्हारे तन-मन से चिपक गया है, इसलिए तुमने ऑफिस में छुट्टी की दरख्वास्त नहीं दी। विधाता की यही इच्छा थी; उन्होंने मेरी छुट्टी की दरख्वास्त मंजूर कर ली।

मैं तुम्हारे घर की मँझली बहू हूँ। पर आज पंद्रह वर्ष बाद इस समुद्र के किनारे खड़े होकर मैं जान पाई हूँ कि अपने जगत् और जगदीश्वर के साथ मेरा एक संबंध और भी है। इसीलिए आज साहस करके यह चिठ्ठी लिख रही हूँ, इसे तुम अपने घर की मँझली बहू की ही चिठ्ठी मत समझना।

तुम लोगों के साथ मेरे संबंध की बात जिन्होंने मेरे भाग्य में लिखी थी, उन्हें छोड़कर जब इस संभावना का और किसी को पता न था, उसी शैशवकाल में मैं और मेरा भाई एक साथ ही सन्निपात के ज्वर से पीड़ित हुए थे। भाई तो मारा गया, पर मैं बची रही। मोहल्ले की औरतें कहने लगीं, 'मृणाल लड़की है न, इसीलिए बच गई। लड़का होती तो क्या बच सकती थी।' चोरी की कला में यमराज निपुण हैं, उनकी नजर कीमती चीज पर ही पड़ती है।

मेरे भाग्य में मौत तक नहीं है। यही बात अच्छी तरह से समझाने के लिए मैं यह चिठ्ठी लिखने बैठी हूँ।

एक दिन जब दूर के रिश्ते में तुम्हारे मामा तुम्हारे मित्र नीरद को साथ लेकर कन्या देखने आए थे, तब मेरी आयु 12 वर्ष की थी। दुर्गम गाँव में मेरा घर था, जहाँ दिन में भी सियार बोलते रहते। स्टेशन से सात कोस तक छकड़ा गाड़ी में चलने के बाद बाकी तीन मील का कच्चा रास्ता पालकी में बैठकर पार करने के बाद हमारे गाँव में पहुँचा जा सकता था। उस दिन तुम लोगों को कितनी हैरानी हुई, जिस पर मामा हमारे पूर्वी बंगाल के उस भोजन की हँसी उड़ाना आज भी नहीं भूलते।

तुम्हारी माँ की एक ही जिद कि बड़ी बहू के रूप की कमी मँझली बहू के द्वारा पूरी करें। नहीं तो भला इतना कष्ट करके तुम लोग हमारे गाँव क्यों आते।

पीलिया, यकृत, अमरशूल और दुलहिन के लिए बंगाल प्रंत में खोज नहीं करनी पड़ती। वे स्वयं ही आकर घेर लेते हैं, छुड़ाए नहीं छूटते।

पिता की छाती धक्-धक् करने लगी। माँ दुर्गा का नाम जपने लगी। शहर के देवता को गाँव का पुजारी क्या देकर संतुष्ट करे। बेटी के रूप का भरोसा था; लेकिन स्वयं बेटी में उस रूप का कोई मूल्य नहीं होता, देखने आया हुआ व्यक्ति उसका जो मूल्य दे, वही उसका मूल्य होता है। इसीलिए तो हजार रूप होने पर भी लड़कियों का संकोच किसी भी तरह दूर नहीं होता।

सारे घर का, यही नहीं, सारे मोहल्ले का यह आतंक मेरी छाती पर पत्थर की तरह जमकर बैठ गया। आकाश का सारा उजाला और संसार की समस्त शक्ति उस दिन मानो इस बारह वर्षीय ग्रामीण लड़की को दो परीक्षकों की दो जोड़ी आँखों के सामने कसकर पकड़ रखने के लिए चपरासगिरी कर रही थी-मुझे कहीं छिपने की जगह न मिली।

अपने करुण स्वर में संपूर्ण आकाश को कँपाती हुई शहनाई बज उठी। मैं तुम लोगों के यहाँ आ पहुँची। मेरे सारे ऐबों का ब्योरेवार हिसाब लगाकर गृहिणियों को यह स्वीकार करना पड़ा कि सबकुछ होते हुए भी मैं सुंदरी जरूर हूँ, यह बात सुनते ही मेरी बड़ी जेठानी का चेहरा भारी हो गया।

लेकिन सोचती हूँ, मुझे रूप की जरूरत ही क्या थी। रूप नामक वस्तु को अगर किसी त्रिपुंडी पंडित ने गंगा-मिट्टी से गढ़ा हो तो उसका आदर हो, लेकिन उसे तो विधाता ने केवल अपने आनंद से निर्मित किया है। इसीलिए तुम्हारे धर्म के संसार में उसका कोई मूल्य नहीं। मैं रूपवती हूँ, इस बात को भूलने में तुम्हें बहुत दिन नहीं लगे। लेकिन मुझमें बुद्धि भी है, यह बात तुम लोगों को पग-पग याद करनी पड़ी। मेरी यह बुद्धि इतनी प्रकृत है कि तुम लोगों की घर-गृहस्थी में इतना समय काट देने पर भी वह आज भी टिकी हुई है। मेरी इस बुद्धि से माँ बड़ी चिंतित रहती थी। नारी के लिए यह तो एक बला ही है। बाधाओं को मानकर चलना जिसका काम है, वह यदि बुद्धि को मानकर चलना चाहे तो ठोकर खा-खाकर उसका सिर फूटेगा ही। लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ? तुम लोगों के घर की बहू को जितनी बुद्धि दे डाली है, अब मैं उसे लौटाऊँ भी तो किसको। तुम लोग मुझे पुरखिन कहकर दिन-रात गाली देते रहे। अक्षम्य को कड़ी बात कहने से ही सांत्वना मिलती है, इसीलिए मैंने उसको क्षमा कर दिया।

मेरी एक बात तुम्हारी घर-गृहस्थी से बाहर थी, जिसे तुममें से कोई नहीं जानता। मैं तुम सबसे छिपाकर कविता लिखा करती थी। वह भले ही कूड़ा-करकट क्यों न हो, उस पर तुम्हारे अंतःपुर की दीवार न उठ सकी। वहीं मुझे मृत्यु मिलती थी, वहीं पर मैं रो पाती थी। मेरे भीतर तुम लोगों की मँझली बहू के अतिरिक्त जो कुछ था, उसे तुम लोगों ने कभी पसंद नहीं किया; क्योंकि उसे

तुम लोग पहचान भी न पाए। मैं कवि हूँ, यह बात पंद्रह वर्ष में भी तुम लोगों की पकड़ में नहीं आई।

तुम लोगों के घर की प्रथम स्मृतियों में मेरे मन में जो सबसे ज्यादा जगती रहती है, वह है तुम लोगों की गोशाला। अंतःपुर को जाने वाले जीने की बगल के कोठे में तुम लोगों की गौएँ रहती हैं, सामने के आँगन को छोड़कर उनके हिलने-डुलने के लिए और कोई जगह न थी। आँगन के कोने में गायों को भूसा देने के लिए काठ की नाँद थी, सवेरे नौकर को तरह-तरह के काम रहते, इसलिए भूखी गाएँ नाँद के किनारों को चाट-चाटकर चबा-चबाकर खुरच देतीं। मेरा मन रोने लगता। मैं गँवई गाँव की बेटी जिस दिन पहली बार तुम्हारे घर में आई, उस दिन उस बड़े शहर के बीच मुझे वे गाएँ और तीन बछड़े चिरपरिचित आत्मीय जैसे जान पड़े।

जितने दिन मैं रही, बहू रही, खुद न खाकर छिपा-छिपाकर मैं उन्हें खिलाती रही; जब बड़ी हुई तब गौओं के प्रति मेरी प्रत्यक्ष ममता देखकर मेरे साथ हँसी-मजाक का संबंध रखने वाले लोग मेरे गोत्र के बारे में संदेह प्रकट करते रहे।

मेरी बेटी जनमते ही मर गई। जाते समय उसने साथ चलने के लिए मुझे भी पुकारा था। अगर वह बची रहती तो मेरे जीवन में जो कुछ महान् है, जो कुछ सत्य है, वह सब मुझे ला देती; तब मैं मँझली बहू से एकदम माँ बन जाती। गृहस्थी में बँधी रहने पर भी माँ विश्व भर की माँ होती है। पर मुझे माँ होने की वेदना ही मिली, मातृत्व की मुक्ति प्राप्त नहीं हुई।

मुझे याद है, अंग्रेज डॉक्टर को हमारे घर का भीतरी भाग देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था और जच्चा-घर देखकर नाराज होकर उसने डाँट-फटकार भी लगाई थी। सदर में तो तुम लोगों का छोटा सा बाग है, कमरे में भी साज- शृंगार की कोई कमी नहीं, पर भीतर का भाग मानो पश्मीने के काम की उल्टी परत हो, वहाँ न कोई लज्जा है, न सौंदर्य, न शृंगार। उजाला वहाँ टिमटिमाता रहता है। हवा चोर की भाँति प्रवेश करती है, आँगन का कूड़ा-करकट हटने का नाम नहीं लेता। फर्श और दीवार पर कालिमा अक्षय बनकर विराजती है। लेकिन डॉक्टर ने एक भूल की थी।

उसने सोचा था कि शायद इस समय को रात-दिन दुख होता होगा। बात बिलकुल उलटी है। अनादर नाम की चीज राख की तरह होती है। वह शायद भीतर-ही-भीतर आग को बनाए रखती है, लेकिन ऊपर से उसके भाव को प्रकट नहीं होने देती।

जब आत्मसम्मान घट जाता है, तब अनादर में अन्याय भी नहीं दिखाई देता, इसीलिए उसकी पीड़ा नहीं होती। यही कारण है कि नारी दुख का अनुभव करने में ही लज्जा पाती है। इसलिए मैं कहती हूँ, अगर तुम लोगों की व्यवस्था यही

है कि नारी को दुख पाना ही होगा तो फिर जहाँ तक संभव हो, उसे अनादर में रखना ही ठीक है। आदर से दुख की व्यथा और बढ़ जाती है।

तुम मुझे चाहे जैसे रखते रहे, मुझे दुख है, यह बात कभी मेरे खयाल में भी न आई। जच्चा-घर में जब सिर पर मौत मँडराने लगी थी, तब भी मुझे कोई डर नहीं लगा।

हमारा जीवन ही क्या है कि मौत से डर पड़े? जिनके प्राणों को आदर और यत्न से कसकर बाँध लिया गया हो, मरने में उन्हीं को कष्ट होता है। उस दिन अगर यमराज मुझे घसीटने लगते तो मैं उसी तरह उखड़ जाती जिस तरह पोली जमीन से घास बड़ी आसानी से जड़ समेत खिंच आती है। बंगाल की बेटी तो बात-बात में मरना चाहती है। लेकिन इस तरह मरने में कौन सी बहादुरी है। हम लोगों के लिए मरना इतना आसान है कि मरते लज्जा आती है।

मेरी बेटी संध्या-तारे की तरह क्षण भर के लिए उदित होकर अस्त हो गई। मैं फिर से अपने दैनिक कामों में और गाय-बछड़ों में लग गई। इसी तरह मेरा जीवन आखिर तक जैसे-तैसे कट जाता; आज तुम्हें यह चिठ्ठी लिखने की जरूरत न पड़ती; लेकिन कभी-कभी हवा एक मामूली सा बीज उड़ाकर ले जाती है और पक्के दालान में पीपल का अंकुर फूट उठता है, और होते-होते उसी से लकड़ी-पत्थर की छाती विदीर्ण होने लग जाती है। मेरी गृहस्थी की पक्की व्यवस्था में भी जीवन का एक छोटा सा कण न जाने कहाँ से उड़कर आ पड़ा; तभी से दरार शुरू हो गई।

जब विधवा माँ की मृत्यु के बाद मेरी बड़ी जेठानी की बहिन बिंदु ने अपने चचेरे भाइयों के अत्याचार के मारे एक दिन हमारे घर में अपनी दीदी के पास आश्रय लिया था, तब तुम लोगों ने सोचा था, यह कहाँ की बला आ गई।

आग लगे मेरे स्वभाव को, करती भी क्या-देखा, तुम सब मन-ही-मन खीझ उठे हो, इसीलिए उस निराश्रिता लड़की को घेरकर मेरा संपूर्ण मन यकायक जैसे कमर बाँधकर खड़ा हो गया हो। पराए घर में, पराए लोगों की अनिच्छा होते हुए भी आश्रय लेना-कितना बड़ा अपमान है यह! यह अपमान भी जिसे विवश होकर स्वीकार करना पड़ा हो, उसे क्या धक्का देकर एक कोने में डाल दिया जाता है?

बाद में मैंने अपनी बड़ी जेठानी की दशा देखी। उन्होंने अपनी गहरी संवेदना के कारण ही बहिन को अपने पास बुलाया था, लेकिन जब उन्होंने देखा कि इसमें पति की इच्छा नहीं है, तो उन्होंने ऐसा भाव दिखाना शुरू किया मानो उन पर कोई बड़ी बला आ पड़ी हो, मानो अगर वह किसी तरह दूर हो सके तो जान बचे। उन्हें इतना साहस न हुआ कि वे अपनी अनाथ बहिन के प्रति खुले मन से स्नेह प्रकट कर सकें। वे पतिव्रता थीं।

@digitalibrary84

उनका यह संकट देखकर मेरा मन और भी दुखी हो उठा। मैंने देखा, बड़ी जेठानी ने खासतौर से सबको दिखा-दिखाकर बिंदु के खाने-पहनने की ऐसी रद्दी व्यवस्था की और उसे घर में इस तरह नौकरानियों के से काम सौंप दिए कि मुझे दुख ही नहीं, लज्जा भी हुई। मैं सबके सामने इस बात को प्रमाणित करने में लगी रहती थी कि हमारी गृहस्थी को बिंदु बहुत सस्ते दामों में मिल गई है। ढेरों काम करती है, फिर खर्च की दृष्टि से बेहद सस्ती है।

मेरी बड़ी जेठानी के पितृंश में कुल के अलावा और कोई बड़ी चीज न थी, न रूप था, न धन। किस तरह मेरे ससुर के पैरों पड़ने पर तुम लोगों के घर में उनका ब्याह हुआ था, यह बात तुम अच्छी तरह जानते हो। वे सदा यही सोचती रहीं कि उनका विवाह तुम्हारे वंश के प्रति बड़ा भारी अपराध था। इसीलिए वे सब बातों में अपने आपको भरसक दूर रखकर, अपने को छोटा मानकर तुम्हारे घर में बहुत ही थोड़ी जगह में सिमटकर रहती थीं।

लेकिन उनके इस प्रशंसनीय उदाहरण से हम लोगों को बड़ी कठिनाई होती रही। मैं अपने आपको हर तरफ से इतना बेहद छोटा नहीं बना पाती, मैं जिस बात को अच्छा समझती हूँ, उसे किसी और की खातिर बुरा समझने को मैं उचित नहीं मानती-इस बात के तुम्हें भी बहुत से प्रमाण मिल चुके हैं।

बिंदु को मैं अपने कमरे में घसीट लाई। जीजी कहने लगीं, 'मँझली बहू गरीब घर की बेटी का दिमाग खराब कर डालेगी।' वे सबसे मेरी इस ढंग से शिकायत करती फिरती थीं मानो मैंने कोई भारी आफत ढा दी हो। लेकिन मैं अच्छी तरह जानती हूँ, वे मन-ही-मन सोचती थीं कि जान बची। अब अपराध का बोझ मेरे सिर पर पड़ने लगा। वे अपनी बहन के प्रति खुद जो स्नेह नहीं दिखा पाती थीं, वही मेरे द्वारा प्रकट करके उनका मन हलका हो जाता। मेरी बड़ी जेठानी बिंदु की उम्र में से दो-एक अंक कम कर देने की चेष्टा किया करती थीं, लेकिन अगर अकेले में उनसे यह कहा जाता कि उसकी अवस्था चौदह से कम नहीं थी, तो ज्यादती न होती।

तुम्हें तो मालूम है, देखने में वह इतनी कुरूप थी कि अगर वह फर्श पर गिरकर अपना सिर फोड़ लेती तो भी लोगों को घर के फर्श की ही चिंता होती। यही कारण है कि माता-पिता के न होने पर ऐसा कोई न था, जो उसके विवाह की सोचता, और ऐसे लोग भी भला कितने थे, जिनके प्राणों में इतना बल हो कि उससे ब्याह कर सकें।

बिंदु बहुत डरती-डरती मेरे पास आई। मानो अगर मेरी देह उससे छू जाएगी तो मैं सह नहीं पाऊँगी। मानो संसार में उसका जन्म लेने का कोई अधिकार ही न था। इसीलिए वह हमेशा अलग हटकर आँख बचाकर चलती। उसके पिता

के यहाँ उसके चचेरे भाई उसके लिए ऐसा एक भी कोना नहीं छोड़ना चाहते थे, जिसमें वह फालतू चीज की तरह पड़ी रह सके।

फालतू कूड़े को घर के आस-पास अनायास ही स्थान मिल जाता है, क्योंकि मनुष्य उसको भूल जाता है; लेकिन अनावश्यक लड़की एक तो अनावश्यक होती है दूसरे उसको भूलना भी कठिन होता है। इसलिए उसके लिए घूरे पर भी जगह नहीं होती। फिर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि उसके चचेरे भाई ही संसार में परमावश्यक पदार्थ थे। जो हो, वे लोग भी खूब थे। यही कारण है कि जब मैं बिंदु को अपने कमरे में बुला लाई तो उसकी छाती धक्त-धक्त करने लग गई। उसका डर देखकर मुझे बड़ा दुख हुआ। मेरे कमरे में उसके लिए थोड़ी सी जगह है, यह बात मैंने बड़े प्यार से उसे समझाई।

लेकिन मेरा कमरा एक मेरा ही कमरा तो था नहीं, इसीलिए मेरा काम आसान नहीं हुआ। मेरे पास दो-चार दिन रहने पर ही उसके शरीर में न जाने क्या-क्या निकल आया। शायद अम्हौरी रही होगी या ऐसा ही कुछ होगा; तुमने कहा-शीतला। क्यों न हो, वह बिंदु थी न। तुम्हारे मोहल्ले के एक अनाड़ी डॉक्टर ने आकर बताया, 'दो-एक दिन और देखे बिना ठीक से कुछ नहीं कहा जा सकता।' लेकिन दो-एक दिन धीरज किसको होता।

बिंदु तो अपनी बीमारी की लज्जा से ही मरी जा रही थी। मैंने कहा, 'शीतला है तो हो, मैं उसे अपने जच्चा-घर में लिवा ले जाऊँगी, और किसी को कुछ करने की जरूरत नहीं।' इस बात पर जब तुम सब लोग मेरे ऊपर भड़ककर क्रोध की मूर्ति बन गए, यही नहीं, जब बिंदु की जीजी भी बड़ी परेशानी दिखाती हुई उस अभागी लड़की को अस्पताल भेजने का प्रस्ताव करने लगीं, तभी उसके शरीर के वे सारे लाल-लाल दाग एकदम विलीन हो गए। मैंने देखा कि इस बात से तुम लोग और भी व्यग्र हो उठे। कहने लगे, 'अब तो वाकई शीतला बैठ गई है।' क्यों न हो, बिंदु थी न।

अनादर के पालन-पोषण में एक बड़ा गुण है। शरीर को वह एकदम अजर-अमर कर देता है। बीमारी आने का नाम नहीं लेती, मरने के सारे आम रास्ते बिलकुल बंद हो जाते हैं। इसीलिए रोग उसके साथ मजाक करके चला गया, हुआ कुछ नहीं है। लेकिन यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो गई कि संसार में ज्यादा साधनहीन व्यक्ति को आश्रय देना ही सबसे कठिन है। आश्रय की आवश्यकता उसको जितनी अधिक होती है, आश्रय की बाधाएँ भी उसके लिए उतनी ही विषम होती हैं।

बिंदु के मन से जब मेरा डर जाता रहा, तब उसको एक और कुग्रह ने पकड़ लिया। वह मुझे इतना प्यार करने लगी कि मुझे डर होने लगा। स्नेह की ऐसी मूर्ति तो संसार में पहले कभी देखी ही न थी। पुस्तकों में पढ़ा अवश्य था, पर वह भी स्त्री -पुरुष के बीच ही। बहुत दिनों से ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी कि मुझे अपने रूप की बात याद आती। अब इतने दिनों बाद यह कुरूप लड़की मेरे उसी रूप के पीछे पड़ गई। रात-दिन मेरा मुँह देखते रहने पर भी उसकी आँखों की प्यास नहीं बुझती थी। कहती, जीजी, तुम्हारा यह मुँह मेरे अलावा और कोई नहीं देख पाता। जिस दिन मैं स्वयं ही अपने केश बाँध लेती, उस दिन वह बहुत रूठ जाती। अपने हाथों से मेरे केश-भार को हिलाने-डुलाने में उसे बड़ा आनंद आता। कभी कहीं दावत में जाने के अतिरिक्त और कभी तो मुझे साज- शृंगार की आवश्यकता पड़ती ही न थी, लेकिन बिंदु मुझे तंग कर-करके थोड़ा-बहुत सजाती रहती। वह लड़की मुझे लेकर बिलकुल पागल हो गई थी।

तुम्हारे घर के भीतरी हिस्से में कहीं रत्ती भर भी मिट्टी न थी। उत्तर की ओर की दीवार में नाली के किनारे न जाने कैसे एक गाब का पौधा निकला। जिस दिन जान पड़ता कि धरती पर वसंत आ गया है और जिस दिन मेरी घर-गृहस्थी में जुटी हुई इस अनादृत लड़की के मान का ओर-छोर किसी तरह रँग उठा, उस दिन मैंने जाना कि हृदय के जगत् में भी वसंत की हवा बहती है। वह किसी स्वर्ग से आती है, गली के मोड़ से नहीं।

बिंदु के स्नेह के दुस्सह वेग ने मुझे अधीर कर डाला था। मैं मानती हूँ कि मुझे कभी-कभी उस पर क्रोध आ जाता; लेकिन उस स्नेह में मैंने अपना एक ऐसा रूप देखा, जो जीवन में पहले कभी नहीं देख पाई थी। वही मेरा मुख्य स्वरूप है।

इधर मैं बिंदु जैसी लड़की को जो इतना लाड़-प्यार करती थी, यह बात तुम लोगों को बड़ी ज्यादती लगी। इसे लेकर बराबर खटपट होने लगी।

जिस दिन मेरे कमरे से बाजूंद चोरी हुआ, उस दिन इस बात का आभास देते हुए तुम लोगों को तनिक भी लज्जा न आई कि इस चोरी में किसी-न-किसी रूप में बिंदु का हाथ है। जब स्वदेशी आंदोलनों में लोगों के घर की तलाशियाँ होने लगीं, तब तुम लोग अनायास ही यह संदेह कर बैठे कि बिंदु पुलिस द्वारा रखी गई स्त्री गुप्तचर है। इसका और तो कोई प्रमाण न था; प्रमाण बस इतना ही था

कि वह बिंदु थी। तुम लोगों के घर की दासियाँ उसका कोई भी काम करने से इनकार कर देती थीं, उनमें से किसी से अपने काम के लिए कहने में वह लड़की भी संकोच के मारे जड़वत् हो जाती थी। इन्हीं सब कारणों से उसके लिए मेरा खर्च बढ़ गया।

मैंने खास तौर से अलग से एक दासी रख ली। यह बात तुम लोगों को अच्छी नहीं लगी। बिंदु को पहनने के लिए मैं जो कपड़े देती थी, उन्हें देखकर तुम इतने क्रुद्ध हुए कि तुमने मेरे हाथ-खर्च के रुपए ही बंद कर दिए।

दूसरे ही दिन से मैंने सवा रुपए जोड़े की मोटी कोरी की धोती पहननी शुरू कर दी। और जब मोती की माँ मेरी जूठी थाली उठाने के लिए आई तो मैंने उसको मना कर दिया। मैंने खुद झूठा भात बछड़े को खिलाने के बाद आँगन के नल पर जाकर बरतन मल लिये। एक दिन एकाएक इस दृश्य को देखकर तुम प्रसन्न न हो सके। मेरी खुशी के बिना तो काम चल सकता है, पर तुम लोगों की खुशी के बिना नहीं चल सकता-यह बात आज तक मेरी समझ में नहीं आई। उधर ज्यों-ज्यों तुम लोगों का क्रोध बढ़ता जा रहा था, त्यों-त्यों बिंदु की आयु भी बढ़ती जा रही थी! इस स्वाभाविक बात पर तुम लोग अस्वाभाविक ढंग से परेशान हो उठेथे।

एक बात याद करके मुझे आश्चर्य होता रहा है कि तुम लोगों ने बिंदु को जबरदस्ती अपने घर से विदा क्यों नहीं कर दिया? मैं अच्छी तरह समझती हूँ कि तुम लोग मन-ही-मन मुझसे डरते थे। विधाता ने मुझे बुद्धि दी है, भीतर-ही-भीतर इस बात की खातिर किए बिना तुम लोगों को चैन नहीं पड़ता था। अंत में अपनी शक्ति से बिंदु को विदा करने में असमर्थ होकर तुम लोगों ने प्रजापति देवता की शरण ली। बिंदु का वर ठीक हुआ।

बड़ी जेठानी बोली, 'जान बची। माँ काली ने अपने वंश की लाज रख ली।' वर कैसा था, मैं नहीं जानती। तुम लोगों से सुना था कि सब बातों में अच्छा है। बिंदु मेरे पैरों से लिपटकर रोने लगी, बोली, 'जीजी, मेरा ब्याह क्यों कर रही हो भला!' मैंने उसको समझाते-बुझाते कहा, 'बिंदु, डर मत, मैंने सुना है तेरा वर अच्छा है।'

बिंदु बोली, 'अगर वर अच्छा है तो मुझमें भला ऐसा क्या है जो उसे पसंद आ सके।' लेकिन वर पक्ष वालों ने तो बिंदु को देखने के लिए आने का नाम भी न लिया। बड़ी जीजी इससे तुंत निश्चिंत हो गईं।

लेकिन बिंदु रात-दिन रोती रहती, चुप होने का नाम ही न लेती। उसको क्या कष्ट है, यह मैं जानती थी। बिंदु के लिए मैंने घर में बहुत बार झगड़ा किया था, लेकिन उसका ब्याह रुक जाए, यह बात कहने का साहस नहीं होता था। कहती तो किस बल पर। मैं अगर मर जाती तो उसकी क्या दशा होती।

एक तो लड़की, उस पर काली; जिसके यहाँ जा रही है, वहाँ उसकी क्या दशा होगी, इस बात की चिंता न करना ही अच्छा था। सोचती तो प्राण काँप उठते।

बिंदु ने कहा, 'जीजी, ब्याह के अभी पाँच दिन और हैं। इस बीच क्या मुझे मौत नहीं आएगी।'

मैंने उसको खूब धमकाया। लेकिन अंतर्यामी जानते हैं कि अगर किसी स्वाभाविक ढंग से बिंदु की मृत्यु हो जाती तो मुझे चैन मिलता।

ब्याह के एक दिन पहले बिंदु ने अपनी जीजी के पास आकर कहा, 'जीजी, मैं तुम लोगों की गोशाला में पड़ी रहूँगी, जो कहोगी वहीं करूँगी, मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, मुझे इस तरह मत धकेलो।'

कुछ दिनों से जीजी की आँखों से चोरी-चोरी आँसू झर रहे थे। उस दिन भी झरने लगे। लेकिन सिर्फ हृदय ही तो नहीं होता, शास्त्र भी तो हैं। उन्होंने कहा, 'बिंदु, जानती नहीं, स्त्री की गति-मुक्ति सबकुछ पति ही है। भाग्य में अगर दुख लिखा है तो उसे कोई नहीं मिटा सकता।'

असली बात तो यह थी कि कहीं कोई रास्ता ही न था-बिंदु को ब्याह तो करना ही पड़ेगा, फिर जो हो सो हो। मैं चाहती थी कि विवाह हमारे ही घर से हो। लेकिन तुम लोग कह बैठे, वर के ही घर में हो, उनके कुल की यही रीति है। मैं समझ गई, बिंदु के ब्याह में अगर तुम लोगों को खर्च करना पड़ा तो तुम्हारे गृह-देवता उसे किसी भी भाँति नहीं सह सकेंगे, इसीलिए चुप रह जाना पड़ा। लेकिन एक बात तुममें से कोई नहीं जानता।

जीजी को बताना चाहती थी, पर बताई नहीं, नहीं तो वे डर से मर जातीं-मैंने अपने थोड़े-बहुत गहने लेकर चुपचाप बिंदु का शृंगार कर दिया था। सोचा था, जीजी की नजर में तो जरूर ही पड़ जाएगा। लेकिन उन्होंने जैसे देखकर भी नहीं देखा। दुहाई है धर्म की, इसके लिए तुम उन्हें क्षमा कर देना।

जाते समय बिंदु मुझसे लिपटकर बोली, 'जीजी, तो क्या तुम लोगों ने मुझे एकदम त्याग दिया?' मैंने कहा, 'नहीं बिंदु, तुम चाहे जैसी हालत में रहो, प्राण रहते मैं तुम्हें नहीं त्याग सकती।'

तीन दिन बीते। तुम्हारे ताल्लुक के आसामियों ने तुम्हें खाने के लिए जो भेड़ा दिया था, उसे मैंने तुम्हारी जठराग्नि से बचाकर नीचे वाली कोयले की कोठरी के एक कोने में बाँध दिया था। सवेरे उठते ही मैं खुद जाकर उसको दाना खिला आती। दो-एक दिन तुम्हारे नौकरों पर भरोसा करके देखा, उसे खिलाने की बजाय उनका झुकाव उसी को खा जाने की ओर अधिक था।

उस दिन सवेरे कोठरी में गई तो देखा, बिंदु एक कोने में गुड़मुड़ होकर बैठी हुई है। मुझे देखते ही वह मेरे पैर पकड़कर चुपचाप रोने लगी।

बिंदु का पति पागल था।

'सच कह रही है बिंदु?'

'तुम्हारे सामने क्या मैं इतना बड़ा झूठ बोल सकती हूँ, दीदी? वह पागल है। इस विवाह में ससुर की सम्मति नहीं थी, लेकिन वे मेरी सास से यमराज की तरह डरते हैं। ब्याह के पहले ही काशी चल दिए थे। सास ने जिद करके अपने लड़के का ब्याह कर लिया।'

मैं वहीं कोयले के ढेर पर बैठ गई। स्त्री पर स्त्री को दया नहीं आती। कहती है, कोई लड़की थोड़े ही है। लड़का पागल है तो हो, है तो पुरुष।

देखने में बिंदु का पति पागल नहीं लगता। लेकिन कभी-कभी उसे ऐसा उन्माद चढ़ता कि उसे कमरे में ताला बंद करके रखना पड़ता। ब्याह की रात वह ठीक था, लेकिन रात में जगते रहने के कारण और इसी तरह के झंझटों के कारण दूसरे दिन से उसका दिमाग बिलकुल खराब हो गया।

बिंदु दोपहर को पीतल की थाली में भात खाने बैठी थी, अचानक उसके पति ने भात समेत थाली उठाकर आँगन में फेंक दी। न जाने क्यों अचानक उसको लगा, मानो बिंदु रानी रासमणि हो। हो न हो, नौकर ने चोरी से उसी के सोने के थाल में रानी के खाने के लिए भात दिया हो, इसलिए उसे क्रोध आ गया था। बिंदु तो डर के मारे मरी जा रही थी। तीसरी रात को जब उसकी सास ने उससे अपने पति के कमरे में सोने के लिए कहा तो बिंदु के प्राण सूख गए। उसकी सास को जब क्रोध आता था तो होश में नहीं रहती थी। बिंदु को कमरे में जाना ही पड़ा। उस रात उसके पति का मिजाज ठंडा था। लेकिन डर के मारे बिंदु का शरीर पत्थर हो गया था।

पति जब सो गए तब काफी रात बीतने पर वह किस तरह चतुराई से भागकर चली आई, इसका विस्तृत विवरण लिखने की आवश्यकता नहीं है।

घृणा और क्रोध से मेरा शरीर जलने लगा। मैंने कहा, 'इस तरह धोखे के ब्याह को ब्याह नहीं कहा जा सकता। बिंदु, तू जैसे रहती थी वैसे ही मेरे पास रह। देखूँ, तुझे कौन ले जाता है?'

तुम लोगों ने कहा, 'बिंदु झूठ बोलती है।'

मैंने कहा, 'वह कभी झूठ नहीं बोलती।'

तुम लोगों ने कहा, 'तुम्हें कैसे मालूम?'

मैंने कहा, 'मैं अच्छी तरह जानती हूँ।'

तुम लोगों ने डर दिखाया, 'अगर बिंदु के ससुराल वालों ने पुलिस केस कर दिया तो आफत में पड़ जाएँगे।'

मैंने कहा, 'क्या अदालत यह बात न सुनेगी कि उसका ब्याह धोखे से पागल वर के साथ कर दिया गया है?'

तुमने कहा, 'तो क्या इसके लिए अदालत जाएँगे? हमें ऐसी क्या गरज है?'

मैंने कहा, 'जो कुछ मुझसे बन पड़ेगा, अपने गहने बेचकर भी करूँगी।'

तुम लोगों ने कहा, 'क्या वकील के घर तक दौड़ोगी?'

इस बात का क्या जवाब होता? सिर ठोकने के अलावा और कर भी क्या सकती थी।

उधर बिंदु की ससुराल से उसके जेठ ने आकर बाहर बड़ा हंगामा खड़ा कर दिया। कहने लगा, 'थाने में रिपोर्ट कर दूँगा।'

नहीं जानती, जिसने मेरा आश्रय लिया हो, उसे पुलिस के डर से फिर उस कसाई को लौटाना पड़े, यह बात मैं किसी भी प्रकार नहीं मान सकती थी, उसी समय बिंदु ने स्वयं बाहर निकलकर अपने जेठ को आत्मसमर्पण कर दिया था। वह समझ गई थी कि अगर वह इस घर में रही तो मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊँगी।

बीच में भाग आने से बिंदु ने अपना दुख और भी बढ़ा लिया। उसकी सास का तर्क था कि उनका लड़का उसको खाए तो नहीं जा रहा था न? संसार में बुरे पति के उदाहरण दुर्लभ भी नहीं हैं। उनकी तुलना में तो उनका लड़का सोने का चाँद है।

मेरी बड़ी जेठानी ने कहा, 'जिसका भाग्य ही खराब हो, उसके लिए रोने से क्या फायदा? पागल-वागल जो भी हो, है तो स्वामी ही न।'

तुम लोगों के मन में लगातार उस सती-साध्वी का दृष्टांत याद आ रहा था, जो अपने कोढ़ी पति को अपने कंधों पर बिठाकर वेश्या के यहाँ ले गई थी।

संसार भर में कायरता के इस सबसे बड़े अधम आख्यान का प्रचार करते हुए तुम लोगों के पुरुष मन को तनिक भी संकोच न हुआ। इसलिए मानव-जन्म पाकर भी तुम लोग बिंदु के व्यवहार पर क्रोध कर सके, उससे तुम्हारा सिर नहीं झुका। बिंदु के लिए मेरी छाती फटी जा रही थी, लेकिन तुम लोगों का व्यवहार देखकर मेरी लज्जा का अंत न था। मैं तो गाँव की लड़की थी, जिस पर तुम लोगों के घर पर आ पड़ी, फिर भगवान् ने न जाने किस तरह मुझे ऐसी बुद्धि दे दी। धर्म-संबंधी तुम लोगों की यह चर्चा मुझे किसी भी प्रकार सहन नहीं हुई।

मैं निश्चयपूर्वक जानती थी कि बिंदु मर भले ही जाए, वह अब हमारे घर लौटकर नहीं आएगी। लेकिन मैं तो उसे ब्याह के दिन से पहले यह आशा दिला चुकी थी कि प्राण रहते उसे नहीं छोडोगी। मेरा छोटा भाई शरद् कलकत्ता में कॉलेज में पढ़ता था। तुम तो जानते ही हो, तरह-तरह से वालंटियरी करना, प्लेग वाले मोहल्लों में चूहे मारना, दामोदर में बाढ़ जाने की खबर सुनकर दौड़ पड़ना- इन सब बातों में उसका इतना उत्साह था कि एफ.ए. की परीक्षा में लगातार दो बार फेल होने पर भी उसके उत्साह में कोई कमी नहीं आई। मैंने उसे बुलाकर कहा, 'शरद, जैसे भी हो बिंदु की खबर पाने का इंतजाम तुझे करना ही पड़ेगा।

बिंदु को मुझे चिठ्ठी भेजने का साहस नहीं होगा, वह भेजे भी तो मुझे मिल नहीं सकेगी।'

इस काम की बजाय यदि मैं उससे डाका डालकर बिंदु को लाने की बात कहती या उसके पागल स्वामी का सिर फोड़ देने के लिए कहती तो उसे ज्यादा खुशी होती।

शरद के साथ बातचीत कर रही थी, तभी तुमने कमरे में आकर कहा, 'तुम फिर यह क्या बखेड़ा कर रही हो?'

मैंने कहा, 'वही तो शुरू से करती आई हूँ, जब से तुम्हारे घर आई हूँ, लेकिन नहीं, वह तो तुम्हीं लोगों की कीर्ति है।'

तुमने पूछा, 'बिंदु को लाकर फिर कहीं छिपा रखा है क्या?'

मैंने कहा, 'बिंदु अगर आती तो मैं जरूर ही छिपाकर रख लेती, लेकिन वह अब नहीं आएगी। तुम्हें डरने की कोई जरूरत नहीं है।'

शरद को मेरे पास देखकर तुम्हारा संदेह और भी बढ़ गया। मैं जानती थी कि शरद का हमारे यहाँ आना-जाना तुम लोगें को पसंद नहीं है। तुम्हें डर था कि उस पर पुलिस की नजर है। अगर कभी किसी राजनीतिक मामले में फँस गया तो तुम्हें भी फँसा डालेगा। इसीलिए मैं भैयादूज का तिलक भी आदमी के हाथों उसी के पास भिजवा देती थी, अपने घर नहीं बुलाती थी।

एक दिन तुमसे सुना कि बिंदु फिर भाग गई है, इसलिए उसका जेठ हमारे घर उसे खोजने आया है।

सुनते ही मेरी छाती में शूल चुभ गए। अभागिनी का असहय कष्ट तो मैं समझ गई, पर कुछ करने का कोई रास्ता न था।

शरद पता करने दौड़ा। शाम को लौटकर मुझसे बोला, 'बिंदु अपने चचेरे भाइयों के यहाँ गई थी, लेकिन उन्होंने अत्यंत क्रुद्ध होकर उसी वक्त उसे फिर ससुराल पहुँचा दिया। इसके लिए उन्हें हरजाने का और गाड़ी के किराए का जो दंड भोगना पड़ा, उसकी खार अब भी उनके मन से नहीं गई है।'

श्रीक्षेत्र की तीर्थ-यात्रा करने के लिए तुम लोगों की काकी तुम्हारे यहाँ आकर ठहरीं। मैंने तुमसे कहा, 'मैं भी जाऊँगी।'

अचानक मेरे मन में धर्म के प्रति श्रद्धा देखकर तुम इतने खुश हुए कि तुमने तनिक भी आपत्ति नहीं की। तुम्हें इस बात का भी ध्यान था कि अगर मैं कलकत्ता में रही तो फिर किसी-न-किसी दिन बिंदु को लेकर झगड़ा कर बैठूँगी। मेरे कारण तुम्हें बड़ी परेशानी थी। मुझे बुधवार को चलना था, रविवार को ही सब ठीक-ठाक हो गया। मैंने शरद को बुलाकर कहा, 'जैसे भी हो, बुधवार को पुरी जाने वाली गाड़ी में तुझे बिंदु को चढ़ा ही देना पड़ेगा।'

शरद का चेहरा खिल उठा। वह बोला, 'डर की कोई बात नहीं, जीजी। मैं उसे गाड़ी में बिठाकर पुरी तक चला चलूँगा। इसी बहाने जगन्नाथपुरी के दर्शन भी हो जाएँगे।'

उसी दिन शाम को शरद फिर आया। उसका मुँह देखते ही मेरा दिल बैठ गया। मैंने पूछा, 'क्या बात है शरद! शायद कोई रास्ता नहीं निकला।'

वह बोला, 'नहीं।'

मैंने पूछा, 'क्या उसे राजी नहीं कर पाए?'

उसने कहा, 'अब जरूरत भी नहीं है। कल रात अपने कपड़ों में आग लगाकर वह आत्महत्या करके मर गई। उस घर में जिस भतीजे से मैंने मेल बढ़ा लिया था, उसी से खबर मिली कि तुम्हारे नाम वह एक चिठ्ठी रख गई थी, लेकिन वह चिठ्ठी उन लोगों ने नष्ट कर दी।'

'चलो, छुट्टी हुई।'

गाँव भर के लोग चीख उठे, कहने लगे, 'लड़कियों का कपड़ों में आग लगाकर मर जाना तो अब एक फैशन हो गया है।'

तुम लोगों ने कहा, 'अच्छा नाटक है।' हुआ करे, लेकिन नाटक का तमाशा सिर्फ बंगाली लड़कियों की साड़ी पर ही क्यों होता है, बंगाली वीर पुरुषों की धोती की चुन्नटों पर क्यों नहीं होता, यह भी तो सोचकर देखना चाहिए।

ऐसा ही था बिंदु का दुर्भाग्य। जितने दिन जीवित रही, तनिक भी यश नहीं मिल सका-न रूप का, न गुण का। मरते वक्त भी यह नहीं हुआ कि सोच-समझकर कुछ ऐसे नए ढंग से मरती कि दुनिया भर के लोग खुशी से ताली बजा उठते। मरकर भी उसने लोगों को नाराज ही किया।

जीजी कमरे में जाकर चुपचाप रोने लगीं, लेकिन उस रोने में जैसे एक सांत्वना थी। कुछ भी सही, जान तो बची। मर गई, यही क्या कम है। अगर बची रहती तो न जाने क्या हो जाता!

मैं तीर्थ में आ पहुँची हूँ। बिंदु के आने की तो जरूरत ही न रही। लेकिन मुझे जरूरत थी।

लोग जिसे दुख मानते हैं, वह तुम्हारी गृहस्थी में मुझे कभी नहीं मिला। तुम्हारे यहाँ खाने-पहनने की कोई कमी नहीं। तुम्हारे बड़े भाई का चरित्र चाहे जैसा हो, तुम्हारे चरित्र में ऐसा कोई दोष नहीं, जिसके लिए विधाता को बुरा कह सवूँक्त। वैसे अगर तुम्हारा स्वभाव तुम्हारे बड़े भाई की तरह भी होता तो भी शायद मेरे दिन करीब-करीब ऐसे ही कट जाते और मैं अपनी सती-साध्वी बड़ी जेठानी की तरह पति देवता को दोष देने के बजाय विश्व-देवता को ही दोष देने की चेष्टा करती। अतएव मैं तुमसे कोई शिकायत नहीं करना चाहती-मेरी चिठ्ठी का कारण यह नहीं है।

लेकिन मैं अब माखन-बड़ाल की गली के तुम्हारे उस सत्ताईस नंबर वाले घर में लौटकर नहीं आऊँगी। मैं बिंदु को देख चुकी हूँ। इस संसार में नारी का सच्चा परिचय क्या है, यह मैं पा चुकी हूँ। अब तुम्हारी कोई जरूरत नहीं।

और फिर मैंने यह भी देखा है कि वह लड़की ही क्यों न हो, भगवान् ने उसका त्याग नहीं किया। उस पर तुम लोगों का चाहे जितना ही जोर क्यों न रहा हो, वह उसका अंत नहीं था। वह अपने अभागे मानव-जीवन से बड़ी थी। तुम लोगों के पैर इतने लंबे नहीं थे कि तुम मनमाने ढंग से, अपने हिसाब से उसके जीवन को सदा के लिए उनसे दबाकर रख सकते, मृत्यु तुम लोगों से भी बड़ी है। अपनी मृत्यु में वह महान् है। वहाँ बिंदु केवल बंगाली परिवार की लड़की नहीं है, केवल चचेरे भाइयों की बहिन नहीं है, केवल किसी अपरिचित पागल पति की प्रंचिता पत्नी नहीं है। वहाँ वह अनंत है।

मृत्यु की उस वंशी का स्वर उस बालिका के भग्न-हृदय से निकलकर जब मेरे जीवन की यमुना के पास बजने लगा तो पहले-पहल मानो मेरी छाती में कोई बाण बिंध गया हो। मैंने विधाता से प्रश्न किया, 'इस संसार में जो सबसे अधिक तुच्छ है, वही सबसे अधिक क्यों हैं?' इस गली में चारदीवारी से घिरे इस निरानंद स्थान में यह जो तुच्छतम बुद-बुद है, वह इतनी भयंकर बाधा कैसे बन गया? तुम्हारा संसार अपनी शठ-नीतियों से क्षुधा-पात्र को सँभाले कितना ही क्यों न पुकारे, मैं उस अंतःपुर की जरा सी चौखट को क्षण भर के लिए भी पार क्यों न कर सकी? ऐसे संसार में ऐसा जीवन लेकर मुझे इस अत्यंत तुच्छ काठ-पत्थर की आड़ में ही तिल-तिलकर क्यों मरना होगा? कितनी तुच्छ है यह मेरी प्रतिदिन की जीवन-यात्रा। इसके बँधे नियम, बँधे अभ्यास, बँधी हुई बोली, बँधी हुई मार, सब कितनी तुच्छ है। फिर भी क्या अंत में दीनता के उस नागपाश बंधन की ही जीत होगी और अपने इस आनंद-लोक की, इस सृष्टि की हार?

लेकिन मृत्यु की वंशी बजने लगी-कहाँ गई राज-मित्रियों की बनाई हुई वह दीवार, कहाँ गया तुम्हारे घोर नियमों से बँधा वह काँटों का घेरा? कौन सा है वह दुख, कौन सा है वह अपमान, जो मनुष्य को बंदी बनाकर रख सकता है? यह लो, मृत्यु के हाथ में जीवन की जय-पताका उड़ रही है। अरी मँझली बहू, तुझे डरने की अब कोई जरूरत नहीं। मँझली बहू के इस तेरे खोल को छिन्न होते एक निमेष भी न लगा।

तुम्हारी गली का मुझे कोई डर नहीं। आज मेरे सामने नीला समुद्र है, मेरे सिर पर आषाढ के बादल।

तुम लोगों की रीति-नीति के अँधेरे ने मुझे अब तक ढक रखा था। बिंदु ने आकर क्षण भर के लिए उस आवरण के छेद में से मुझे देख लिया। वही लड़की अपनी मृत्यु द्वारा सिर से पैर तक मेरा वह आवरण उघाड़ गई है। आज बाहर

आकर देखती हूँ, अपना गौरव रखने के लिए कहीं जगह ही नहीं है। मेरा यह अनादृत रूप जिनकी आँखों को भाया है, वे सुंदर आज संपूर्ण आकाश से मुझे निहार रहे हैं। अब मँझली बहू की खैर नहीं।

तुम सोच रहे होगे, मैं मरने जा रही हूँ-डरने की कोई बात नहीं। तुम लोगों के साथ मैं ऐसा पुराना मजाक नहीं करूँगी। मीराबाई भी तो मेरी ही तरह नारी थी। उनकी जंजीरें भी तो कम नहीं थीं, बचने के लिए उनको तो मरना ही नहीं पड़ा। मीराबाई ने अपने गीत में कहा था, "बाप छोड़े, माँ छोड़े, जहाँ कहीं जो भी है, सब छोड़ दें, लेकिन मीरा की लगन वहीं रहेगी प्रभु, अब जो होना है सो हो।

यह लगन ही तो जीवन है।

मैं अभी जीवित रहूँगी। मैं बच गई।

तुम लोगों के चरणों के आश्रय में छूटी हुई।

मृणाल।"

❑❑❑

@digitallibrary84